अशोक पाण्डेय

लेखक-परिचय

आप एक अवकाश प्राप्त प्राचार्य हैं। आप रूसी परिसंघ की राजधानी मॉस्को केंद्रीय विद्यालय में 1999 से लेकर 2002 तक पी.जी.टी. हिन्दी रहे हैं। साथ ही साथ भारतीय दूतावास मॉस्को के जवाहरलाल नेहरु कल्चरल सेंटर पर हिन्दी व्याख्याता के रूप में भी काम कर चुके हैं। 2010 में आप जापान की यात्रा कर चुके हैं। आप एक सच्चे जगन्नाथ भक्त हैं जिनकी विश्व प्रसिद्ध रथ यात्रा का श्री पुरी धाम से आँखों देखा हाल पूरे विश्व को पिछले लगभग 20 सालों से सुनाते आ रहे हैं। आपकी अद्वितीय हिन्दी रचना भारतीय संस्कृति को ओड़िशा की देन, रामराज्य, नव कलेवर और रथयात्रा, महाप्रभु जगन्नाथ और महाप्रसाद प्रकाशित रचनाएँ हैं। आप गोवर्द्धन पीठ परिषद्, पुरी धाम के संयुक्त सचिव हैं। आप आजीवन जगन्नाथ संस्कृति के प्रचारक हैं। आपने पहली बार हिन्दी में महाप्रभु जगन्नाथ पर अपनी वेबसाईट खोली हैं, जिसका नाम है www.mahaprabhu.in

फोनः 08895267920 • E-mail: ashok.pandey.pandey630@gmail.com

ISBN 819037076-6

मूल्यः ₹ 50/- मात्र

भारतीय संस्कृति की एक अद्वितीय पुस्तक
महाप्रभु जगन्नाथ
अशोक पाण्डेय

महाप्रभु जगन्नाथ

भारतीय संस्कृति की एक अद्वितीय पुस्तक

लेखकः
अशोक पाण्डेय

महाप्रभु जगन्नाथ

भारतीय संस्कृति की एक अद्वितीय पुस्तक

लेखक

अशोक पाण्डेय

प्रकाशकः

रामा पब्लिकेशन्स

नई दिल्ली

जगत के नाथ श्री जगन्नाथ जी के बारे में
विस्तार से जानने के लिए कृपया लॉगइन करें:

www.mahaprabhu.in

महाप्रभु जगन्नाथ

© लेखक

दसवाँ संस्करण: 2014

मूल्य: ₹ 50/- मात्र

लेखक: अशोक पाण्डेय

ISBN: 978-81-903707-6-9

प्रकाशक: रामा पब्लिकेशन्स
एच-3/26, बंगाली कॉलोनी,
महावीर एन्क्लेव, नई दिल्ली-45
फोन: 09313553434, 09311353434
E-mail: ramapublications@gmail.com

MAHAPRABHU JAGANNATH

© Author

10th Edition : 2014

Price : ₹ 50/- only

Author : **Ashok Pandey**

ISBN: 978-81-903707-6-9

Publisher : **Rama Publications**
H-3/26, Bengali Colony,
Mahavir Enclave, Palam,
New Delhi-110045
Ph.: 09313 55 3434, 09311 35 3434
E-mail: ramapublications@gmail.com

जय जगन्नाथ!

आभारी हूँ मैं...

कहते हैं कि भक्ति में ही सच्ची आध्यात्मिक शक्ति है और जानने वाले भी यह जानते हैं कि मन की शक्ति में ही सच्ची आध्यात्मिक भक्ति है और आप तो हमसे भी बेहतर जानते हैं:-

''हमको मन की शक्ति देना, मन विजय करे, दूसरों की जय से पहले खुद की जय करें।.....''

इसलिए सबसे पहले अपने इष्टदेव श्री जगन्नाथजी के प्रति मैं अपना पहला आभार निवेदित करता हूँ, जिन्होंने मुझे उनके विषय में लिखने की स्वयं प्रेरणा दी। दूसरा आभार मेरा जाता है उनके प्रथम सेवक श्री श्री दिव्यसिंहदेवजी महाराज को, जो पुरी के गजपति हैं और हमारे प्रेरणास्रोत हैं। तीसरा आभार है मेरा, भारत के वास्तविक शिक्षाविद् एशिया की सबसे बड़ी संस्था 'कीट-कीस' के संस्थापक डॉ. अच्युत सामंत को, जिनका विदेह जीवन 'सादा जीवन और उच्च विचार' सदा हमारे भक्ति का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा क्योंकि आप एक सच्चे जगन्नाथ-भक्त और हनुमान भक्त भी हैं। चौथा आभार है मेरा, दूरदर्शन केंद्र, भुवनेश्वर के निदेशक श्री बैकुण्ठ पाणिग्राही जी को, जिन्होंने सदा हमें प्रभु सेवा की ओर उन्मुख किया। आभारी हूँ मैं उसी केंद्र के, श्री दुर्गादत्त कानुनगो का, जिन्होंने महाप्रभु की सभी दुर्लभ तस्वीरें मुझे उपलब्ध कराईं। इस पुस्तक के प्रकाशन में एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देने वाले दिल्ली के प्रकाशक, रामा पब्लिकेशन्स को, जिनके भगीरथ प्रयत्न से आनन-फानन में ही मेरी पुस्तक का नवाँ संस्करण समय से पहले छप गया। मैं आभारी हूँ पुरी धाम के श्रीमंदिर प्रशासन का, जिनके सहयोग से मेरी पुस्तकें प्रशासन के सभी बिक्री केंद्रों पर आज उपलब्ध हैं।

अंत में, देश-विदेश के अपने समस्त जगन्नाथ भक्त हिंदी पाठकों के प्रति मैं आभारी हूँ जिन्होंने मेरी पुस्तकों को आद्योपांत पढ़ने का कष्ट उठाया और अपना बहुमूल्य सुझाव मुझे दिया।

जय जगन्नाथ!

कार्तिक पूर्णिमा, पुरी धाम
दिनांक: 11.11.11

अशोक पाण्डेय
प्रभु का आजीवन सेवक

भारत राष्ट्र के आध्यात्मिक दिव्य पुरुष पूज्यपाद स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वती महाराज शंकराचार्य, पुरी धाम (ओडिशा) का नववर्ष 2014 का समस्त भारतवासियों के नाम पावन संदेश

पाश्चात्यजगत्के नववर्षके उपलक्ष्यमें उद्बोधन एवम् सन्देश

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, समृद्ध, सेवापरायण और स्वस्थ व्यक्ति तथा समाजकी संरचनामें विश्वकी मेधा-रक्षा-वाणिज्य और श्रमशक्तिका उपयोग एवम् विनियोग हो! विश्वको धर्मनियन्त्रित-पक्षपातविहीन-शोषणविनिर्मुक्त-सर्वहितप्रद शासनतन्त्र सुलभ करानेमें सत्पुरुषोंकी प्रीति तथा प्रवृत्ति परिलक्षित हो! सेवा और सहानुभूतिके नामपर किसी वर्गके अस्तित्व और आदर्शको विलुप्त करनेका षड्यन्त्र विश्वस्तरपर मानवोचित शीलकी सीमामें जघन्य अपराध उद्घोषित हो! विकासके नामपर पर्यावरणको विकृत और विलुप्त करनेके समस्त प्रकल्प निरस्त हों! स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके हितमें पाश्चात्य जगत्का नववर्ष विनियुक्त हो! पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन और आकाश सर्वशान्तिप्रद और सुखप्रद हों!

~ निश्चलानन्दसरस्वती

~ श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य - गोवर्द्धनमठ - पुरीपीठ

ओडिशा - भारत

पुरी के शंकराचार्य जगतगुरु स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वती का संदेश मानवाधिकार पर

पुरी के शंकराचार्य जगतगुरु स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वती ने अपने मानवाधिकार के संदेश में यह बताया कि सबके प्रति हित की भावना से स्नेह और सहानुभूति मानवोचित शील है। भारत के बहुसंख्यक वर्ग के अस्तित्व और आदर्श को विलुप्त करने वाले अधिनियम मानवाधिकार की सीमा में पारित तथा क्रियान्वित करने योग्य हों। जिस वर्ग का परंपरा प्राप्त भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, उत्सव, त्यौहार, रक्षा, सेवा, न्याय, विवाह आदि दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातल पर सर्वोत्कृष्ट है केवल उस वर्ग से संबद्धता के कारण ही मानवाधिकार की सीमा में कैसे लांछित और तिरस्कृत करने योग्य माना जा सकता है? किसी वर्ग को और उससे संबद्ध व्यक्ति को राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक होने मात्र से मानवता तथा राष्ट्रीयता के लिए अभिशाप रूप किसी अधिनियम के अन्तर्गत उपद्रव करने की पूर्ण अथवा आंशिक स्वतंत्रता कैसे प्रदान की जा सकती है? भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 में जिस प्रकार पूर्वजन्म, ओंकार, स्वस्तिक, गोवंश और गंगा आदि आस्थान्वित सिख, जैन, बौद्ध को छल, बल, डंके की चोट से अल्पसंख्यक उद्घाषित कर हिंदुओं को अल्पसंख्यक बनाने का प्रकल्प आदि चलाया जा रहा है उसे आज बंद करने और निरस्त करने की आवश्यकता है। मानवता के पक्षधर क्रिश्चियन, मुस्लिम तथा कम्यूनिस्ट तंत्रों को भी ऐसे घातक तत्वों से सावधान रहने की आवश्यकता है।

– अशोक पाण्डेय

परम पूज्य स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वती की अनोखी पहलः श्री जगन्नाथ पंचरात्र महोत्सव

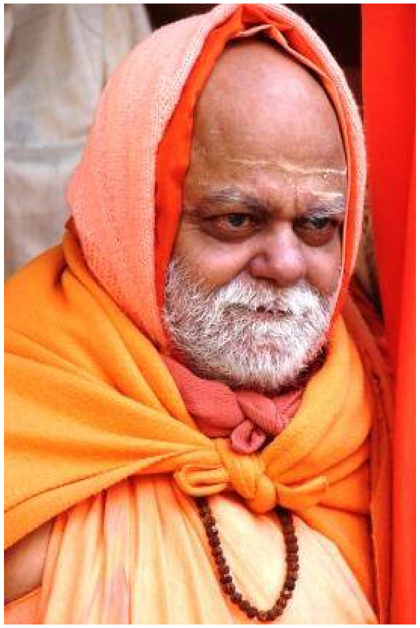

स्वामीजी की पहल पर पहली बार पुरी धाम में दिनांक 09 फरवरी, 2012 से दिनांक 14 फरवरी, 2012 तक विश्व के समस्त जगन्नाथ मंदिर प्रमुखों का 6 दिवसीय समागम हुआ जिसमें विश्व के लगभग 1000 साधु-संतों का अद्वितीय समागम हुआ। इस समागम का नाम दिया गया **'श्री जगन्नाथ पंचरात्र महोत्सव'**। इसके आयोजन का उद्देश्य पूरे विश्व में जगन्नाथ संस्कृति का श्रीमद्भागवत कथा, रामकथा, श्रीकृष्ण कथा आदि की तरह जगन्नाथजी की कथा भी वर्ष भर कम से कम 5 दिवस, 7 दिवस, 9 दिवस और 11 दिवस तक जाने माने श्रीजगन्नाथ व्यास से कराई जाये। साथ ही साथ श्रीजगन्नाथ मंदिर की मान्य रीति-नीति की तरह ही श्री जगन्नाथजी की दिनचर्या, पूजा-पाठ, भोग और पर्व-त्यौहार आयोजित हो। विश्व प्रसिद्ध रथयात्रा, बाहुड़ा यात्रा और सोना वेष आदि के आयोजन की तारीख वहीं हों जो पुरी धाम के जगन्नाथ मंदिर की हर साल रहती हैं।

श्री जगन्नाथ मंदिर प्रशासन, पुरी धाम ने इस जिम्मेदारी को वहन किया जिसमें मार्गदर्शन मिला पुरी धाम के शंकराचार्य पूज्य पूज्य स्वामी श्री श्री निश्चलानंदजी सरस्वती का एवं पुरी के गजपति महाराज श्री श्री दिव्यसिंहदेवजी का। सहयोगी संत-महात्माओं में पूज्य स्वामी नर्लिप्तानंद

सरस्वती, पूज्य बाबा चैतन्य चरण दास, पूज्य बाबा सच्चिदानंद दास, प्रो. डॉ. आलेख चरण सारंगी, पूज्य स्वामी परमहंस प्रज्ञानंद दास, पूज्य स्वामी माधवानंद सरस्वती, पूज्य स्वामी निगमानंद सरस्वती, पूज्य बाबा किशोरी चरण दास, पूज्य स्वामी परिसुधानंद, पूज्य स्वामी शिवचितानंद, पूज्य स्वामी धर्मप्रकाशानंद, पूज्य स्वामी असीमानंद सरस्वती, श्री प्रदीप्त कुमार महापात्र, (मुख्यप्रशासक, पुरी श्रीमंदिर), प्रो. डॉ. नीलकण्ठ पति जबकि मुख्य यजमान रहे उद्योगपति एवं सच्चे समाजसेवी श्री सुरेंद्र कुमार डालमिया।

इस अवसर पर एक स्मारिका का भी विमोचन किया गया। साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित किया गया कि श्रीमंदिर प्रशासन पुरी की ओर से श्रीजगन्नाथजी की दिनचर्या एवं पूजन विधि आदि की एक मान्य रचना देवनागरी लिपि में प्रकाशित की जाय जिसके आधार पर पूरे विश्व के जगन्नाथ मंदिरों में श्रीजगन्नाथजी की पूजा आदि में एकरूपता बनी रहे। यह आयोजन पूरी तरह से कामयाब रहा।

भारत के अनन्यतम धाम पुरी धाम के शंकराचार्य एवं पुरी गोवर्द्धनपीठ के 145वें पीठाधीश्वर परम पूज्य श्रीजगतगुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वतीजी महाराज का नववर्ष 2014 का समस्त भारतवासियों के नाम पावन संदेश

''संदेश नहीं मैं स्वर्ग का लाया, भूतल को स्वर्ग बनाने आया।''

स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी की ये पंक्तियाँ नई सदी के वास्तविक संन्यासी, मनीषी, विदेह, त्यागी, तपस्वी एवं भारतीयता की रक्षा करने वाले पुरी धाम के शंकराचार्य परम पूज्य श्रीजगतगुरु शंकराचार्य के साथ अक्षरशः चरितार्थ हो रही है।

स्वामीजी का यह भी मानना है-

''निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी,
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि-बलिदानी।''

स्वामीजी समष्टि के हित के लिए व्यष्टि का बलिदान चाहते हैं और यही भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र भी है। आप सदा यह चाहते हैं कि भारत विश्व आध्यात्मिक चेतना का केन्द्र बिंदु बना रहे। शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य अर्थ और काम न हो। आपको जननी, जन्मभूमि से अटूट लगाव है। आपको भारतदेश की सुरक्षा, कल्याण, भारतीय संस्कृति को बचाये रखने एवं आध्यात्मिक चेतना को बचाये रखने की चिंता है।

आपका आविर्भाव आर्यावर्त की मिथिलांचल पावन धरा-धाम पर हुआ जहाँ पर विदेह राजा जनक, जनकनंदिनी श्री सीता, गौतम बुद्ध, कणादि, कुमारिल, मण्डन, वाचस्पति, शंकर मिश्र, उदयन, गणेश उपाध्याय, मैथिल कोकिल विद्यापति, गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, उभयभारती आदि का आविर्भाव हुआ था। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध का हुआ था। आप जब 2 साल के थे तो रात के बारह-बारह बजे तक जगकर पढ़ते थे, आप 6 साल के बाल्यकाल से ही भारतीय धर्म, दर्शन और अध्यात्म से जुड़ गये। जब आप 10 साल के हुए तभी से आपका मन संन्यासी जीवन में रम गया और उसी समय आपने समस्त वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण और महाभारत पढ़ डाली। एक बार बचपन में आपने सपना देखा कि आपके गांव के समीप के भगवान श्रीकृष्ण मंदिर से भगवान का आभूषण चोरी हो गया है और सुबह जब देखा गया तो सचमुच भगवान का कीमती आभूषण चोरी हो गया था। कहते हैं कि आपके बाल्यकाल में ही भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं आपके सम्मुख प्रकट होकर आपके कंधों पर हाथ रखकर आपको अपना सखा स्वीकार किया था। कल क्या होने वाला है इसकी जानकारी आपको अपनी साधना और दिव्यशक्ति से हो जाती है। आप पिछले 50 सालों से महाप्रभु श्री जगन्नाथजी महाराज के देश के संस्कृति पुरुष रहे हैं। सहजता एवं वितरागी जीवन आपकी पहचान रही। आप भारतीय संस्कृति की पर्याय बन चुकी जगन्नाथ संस्कृति के प्रचारक हैं। श्रीमंदिर में रथयात्रा, देवस्नानपूर्णिमा और बाहुड़ा यात्रा में प्रभु की प्रथम सेवा का पूर्ण अधिकार है। आप पुरी गोवर्द्धन पीठ के पीठाधीश्वर हैं जहाँ के मुख्य देव भगवान श्री जगन्नाथजी और माता विमलाजी मुख्य देवी हैं।

आप भारतीय आध्यात्मिक चेतना के पुरोधा, ऋग्वेद के अनुपालक, श्रीजगन्नाथ संस्कृति के यथार्थ आदर्श एवं भारतीय युवा विवेक के निर्माता हैं। आपने अपने एक प्रवचन में बड़ी विनम्रता, विलक्षणता एवं शालीनता के साथ यह बताया कि आज की शिक्षा व्यवस्था पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित हो चुकी है जहाँ पर जीवन के शाश्वत जीवन मूल्यों,

नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों का ह्रास हो चुका है। आज की शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह से अर्थ और काम तक सीमित होकर रह गई है। आज के बच्चे नहीं जानते कि भारतीयता क्या है और हमारे संस्कार क्या हैं? ऐसे में आज के युवावर्ग को अपने बड़े-बुजुर्गों का आदर करना, शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित साधु-संतों के प्रवचन आदि को सुनना चाहिए। उन्होंने बताया कि आज के प्रजातंत्र की अवधारणा बदल चुकी है। आज न वशिष्ठ जैसा गुरु है और न ही राम जैसा छात्र। ऐसे में सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि आज के युवावर्ग को दिशाहीन होने से बचाने की है और यह तभी संभव है जब आज के युवा इस बात को स्वीकार करें कि उनका सर्वांगीण विकास भारतीयता को अपनाकर आगे बढ़ने में ही है। उन्होंने भारतीय संयुक्त परिवार की टूटती दशा पर चिंता व्यक्त करते हुए आज के अन्तरजातीय विवाह के बढ़ते प्रचलन को दोषी बताया। जैसा कि विदित हो कि स्वामीजी न केवल जगन्नाथ संस्कृति के प्रचारक हैं अपितु भारतीय आध्यात्मिक चेतना के प्राण, भारतीय राष्ट्रीय विवेक के निर्माता भी हैं जिनके आचरण, व्यवहार एवं पारदर्शी उज्ज्वल व्यक्तित्व में समाज को बचाने की प्रेरणा समाहित है।

प्राप्त जानकारी के आधार पर पुरी गोवर्द्धनपीठ का निर्माण आज से लगभग 2500 साल पहले हो चुका था जबकि पुरी धाम के श्रीमंदिर का निर्माण 1215 में हुआ। आपकी चिंता आज के व्यक्ति, समाज, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाजसेवा, सरकार, प्रजा, गुरु, शिष्य, शाश्वत जीवन मूल्य, नैतिक मूल्य, प्रजातांत्रिक मूल्य, योग साधना, ध्यान, चिंतन, मनन, वेदपाठ, गौरक्षा, साधु-संतों की सुरक्षा, भारत के तीर्थस्थलों की सुरक्षा एवं साफ-सफाई, कर्त्तव्यबोध, शक्तिबोध, व्यावहारिक ज्ञान, शिष्टाचार, सहयोग, मैत्री और सही संस्कार आदि की है।

अशोक पाण्डेय

पुरी गोवर्द्धन पीठ परिषद के संयुक्त सचिव

श्रीजगतगुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वतीजी महाराज के प्रवचन के कुछ अंश

17 दिसंबर, 2012 को उद्योगपति, समाजसेवी श्री किशन लालजी भरितया के कटक निवासस्थल महानदी विहार में दिये गये आपके प्रवचन के कुछ अंश-

सर्व प्रथम उपस्थित सैकड़ों अनुयायियों द्वारा स्वामीजी की दिव्य चरण पादुका का पूजन हुआ। स्वामीजी की वंदना, गुरु-वंदना एवं जगन्नाथ स्वामी की वंदना के उपरांत स्वामीजी का अभिवादन मुख्य यजमान श्री किशनलाल भरितया तथा पुरी गोवर्द्धन पीठ परिषद के संयुक्त सचिव श्री अशोक पाण्डेय ने किया। स्वामीजी की अध्यात्म सेवा और देश-विदेश में उनकी आध्यात्मिक साधना और प्रवचनों का अधिक से अधिक लाभ विश्व मानवता को मिले ऐसी कामना दोनों अनुयायियों ने की। व्यासपीठ पर विराजमान जगतगुरु स्वामी निश्चलानंद सरस्वती ने बताया कि वे हाल ही में एक सप्ताह पूर्व नेपाल भगवान बुद्ध की जन्मस्थली के समीप रामनगर गये हुए थे, जहाँ पर उनके आध्यात्मिक प्रवचन को नेपाल के लगभग 3.5 लाख लोगों ने सुना जिनमें हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई तीनों थे। नेपाल विश्व का एकमात्र ऐसा हिन्दू राष्ट्र है जहाँ पर लगभग 82 फीसदी हिन्दू रहते हैं। उनके साथ मंचासीन बौद्ध, जैन, सिख सभी संत, महात्मा और धर्मगुरुओं ने उनके प्रवचन को ध्यानपूर्वक सुना।

स्वामीजी ने बताया कि नेपाल और भारत का रिश्ता काफी सुदीर्घ रहा है। आज भी पुरी धाम में नेपाल नरेश का श्रीजगन्नाथ मंदिर में दर्शन राजकीय सम्मान के साथ होता है। श्री जगन्नाथजी के शालिग्राम में

बहुतायत सहयोग नेपाल का होता है। उसी प्रकार नेपाल भगवान पशुपतिनाथ मंदिर में भी शंकराचार्य को शाही सम्मान का प्रावधान है।

आज किसी भी देश के सुशासन के लिए सुसांस्कृतिक तंत्र, सुसामाजिक तंत्र का होना नितांत आवश्यक है। उन्होंने बताया कि नेपाल में जितने भी संगठन हैं अत्यधिक की राय में नेपाल हिन्दू राष्ट्र के रुप में पूरी तरह विकसित हो जबकि विकास के नाम पर भारत में यह अवधारणा समाप्त होती नजर आ रही है। ऐसे में भारत के सभी हिन्दुओं को मिलकर एक हिन्दू चैनल चलाना चाहिए जहाँ से बाल-संस्कार, समाज-संस्कार, आदर्श संयुक्त परिवार संस्कार, भारतीय संस्कृति पर आधारित शिक्षा-संस्कार, गौरक्षा संस्कार, व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवनोपयोगी संस्कार, कृषि संस्कार, पशुबल संस्कार के साथ साथ नियमित रामायण, महाभारत, पौराणिक कथाओं का नियमित प्रसारण किया जाये। गुरु वशिष्ठ, याज्ञवलक्य, चाणक्य और गुरु करपात्री जी जैसे गुरुओं के जीवन को बच्चों को दिखाया जाये। राम, कृष्ण, एकलव्य और नचिकेता जैसे शिष्यों के आदर्श को प्रदर्शित किया जाये जिनका पूरा लाभ भारत के भावी कर्णधारों और समाज को मिल सके। उन्होंने बताया कि नेपाल में जो सत्ता परिवर्तन हुआ है इसका आभास उनको पहले ही हो चुका था और नेपाल के पूर्व नरेश को दे चुके थे। आज भी उनकी इच्छा है कि नेपाल के समस्त हिन्दू संगठनों की एकजुटता बनी रहे। भारतीय परिप्रेक्ष्य का हवाला देते हुए उन्होंने बताया कि भारत में सुशासनतंत्र हो, जिसके लिए आवश्यकता है यहाँ के सामाजिक तंत्र और सांस्कृतिक तंत्र में एकजुटता की और सामंजस्य की।

उन्होंने बताया कि उनके व्यक्तिगत प्रयासों से दक्षिण में श्रीरामसेतु, अयोध्या में राममंदिर समस्या का समाधान हो पाया। उन्होंने बताया कि वे कभी मरने से नहीं डरते जबकि उनके ऊपर 22 बार मारने का प्रयास हो चुका है और दो बार उन्हें विष देने का प्रयास भी हो चुका है। उन्होंने बताया कि विकास के नाम पर जो कुछ भी विश्व में हो रहा है वह उचित नहीं है। उन्होंने बताया कि उनका पूरा जीवन भारतीय आदर्श आध्यात्मिक प्रचार-प्रसार एवं सांस्कृतिक धरोहर को बचाने में लगा

रहेगा। गौरतलब है कि स्वामीजी की अब तक विभिन्न विषयों पर कुल 75 रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं।

स्वामीजी भारतीय संस्कृति, भारतीय अध्यात्म, गौरक्षा, जीवन के शाश्वत जीवन मूल्यों एवं भारत की शाश्वत आदर्श सामाजिक व्यवस्था को बचाये रखने में अपना पूरा जीवन व्यतीत करते हैं। एक श्रोता के प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने बताया कि एक शंकराचार्य के रूप में उन्होंने जो कुछ किया है वह पूरे भारत और विश्व के लिए अभूतपूर्व है चाहे वह श्रीराममंदिर निर्माण की बात अयोध्या में हो या श्रीरामसेतु की रक्षा की बात दक्षिण भारत के रामेश्वरम हो। चाहे धर्मांतरण पर रोक लगाने की बात हो या अन्तर्जातीय विवाह पर अंकुश लगाने की बात। चाहे बाल विवाह की बात हो या कन्याभ्रूण हत्या को रोकने की बात। चाहे गौरक्षा की बात हो या दलाईलामा के विचारों में परिवर्तन की बात। उन्होंने बताया कि दलाईलामाजी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके अनुयायी बने हुए हैं।

नेपाल में बाबा गोरखनाथ के नाम पर गोरखा रेजिमेंट गठन और उनका नेपाल में अजातशत्रु के रूप में जाना यह सिद्ध करता है कि पिछले 20 सालों से वे अपने समस्त भौतिक एवं सांसारिक सुखों का त्यागकर मानवता की रक्षा में सदा लगे हुए हैं। आज जिस तरह की असुरक्षा का माहौल देश के साधु-संतों, महात्माओं एवं धर्मगुरुओं का है वह सर्वविदित है। ऐसी स्थिति में देश के लोगों को आपसी सामंजस्य की आवश्यकता है। पुरी धाम में गजपति महाराज से बातों-बातों में वे कहा करते हैं कि आप तो क्षत्रिय होकर भी हमेशा शांति, शांति, शाति और शांति पुकारतें हैं लेकिन मैं तो अपनी जान की परवाह किये बिना भारतीय अध्यात्म की रक्षा के लिए ब्राह्मण होकर भी क्रांति, क्रांति, क्रांति पुकारता हूँ और इसे ही अपने जीवन का संकल्प मानकर साल के कम से कम 250 दिनों तक ओडिशा से बाहर रहकर देश-विदेश में इसे बचाने का प्रयास करता हूँ। अब तो हमारे अनुयायियों को समझ लेना चाहिए कि मैं उनके के लिए क्या करता हूँ और वे भारत के राष्ट्र निर्माण में उनका कितना सहयोग करते हैं।

अशोक पाण्डेय

पुरी गोवर्द्धन पीठ परिषद के संयुक्त सचिव

महाप्रभु जगन्नाथ के एक अनन्य भक्त का संकल्प आजीवन ''देने की कला'' का प्रचार

17 मई, 2013 से

बात 1969 की है। एक दिन सुबह करीब 5.00 बजे चार साल का एक शिशु यह नहीं समझ पा रहा था कि क्यों उसके परिवार के सभी सदस्य आँसू बहा रहे हैं? वे पूरी तरह क्यों निस्तब्ध एवं शोक संतप्त हैं? वह नादान बालक यह नहीं समझ पा रहा था कि वह करे तो क्या करे? नहीं करे तो क्या नहीं करे? सबको उदास देखकर उसके भी चहरे पर उदासी थी। लेकिन अन्ततोगत्वा वह समझ गया कि उसके पिताजी का असामयिक निधन हो चुका है जबकि वह नहीं जानता था कि 'सांसारिक निधन' क्या होता है? यह उसकी समझ से परे की बात थी। उसके पिताजी का निधन एक दु:खद रेल दुर्घटना में हो गया था। पिताजी उसकी विधवा माँ और उसके कुल 7 भाई-बहनों को असहाय दयनीय हालात में छोड़कर काल-कवलीत हो चुके थे। उस घर का सबसे छोटा सदस्य मात्र एक माह का था जबकि सबसे बड़ा सदस्य 17 साल का। उसके पिताजी एक कारखाने में एक साधारण कर्मचारी थे जो अपने पीछे परिवार के कुल 8 सदस्यों के भरण-पोषण के लिए कुछ भी जमा पूँजी छोड़कर नहीं गये थे। वह शिशु ओडिशा प्रदेश के एक दूर-दराज गाँव में घोर गरीबी की दलदल में पला। जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों ने उसको पल-पल जीना सिखाया। वह शिशु लाचार होकर अपने बाल्यकाल के आनंद का परित्याग कर पाँच साल की उम्र में अपने

परिवार के भरण-पोषण का एकमात्र सहारा बन गया। वह यहाँ-वहाँ स्वेच्छापूर्वक कुछ शारीरिक श्रम कर, अर्थोपार्जन कर अपनी विधवा माँ की सहायता में लग गया। पाँच की उम्र में ही उस बालक को जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों ने स्वावलंबी बना दिया। अपने श्रम की कमाई से अपनी विधवा माँ की आँखों के आँसू पोंछे। अपनी छोटी बहन को उसकी गोद में सोने जैसा सुख दिया। सात साल की उम्र में ही वह बालक कमाऊ बन गया। वह अपने पसीने की प्रतिदिन की कमाई का एक रुपया स्वयं रखता और बाकी अपने चार सहपाठियों पर उनके नाश्ता-चाय पर खर्च करता था। यही नहीं, समय-समय पर वह अपने गांव के नजदीक के बाजार से सब्जी और रोजमर्रे की सामग्री लाने में अक्सर अपने गांववालों की भी सहायता करता था।

कालांतर में बालक बड़ा हुआ। वह भुवनेश्वर के उत्कल विश्वविद्यालय से एम.एससी. कर रहा था। एक दिन उसके सबसे बड़े भाई ने उसे कॉलेज पिकनिक पर जाने के लिए कुल 300 रुपये दिये, जिसने वह अपने उस साथी को दे दिये जो कालेज पिकनिक पर जाना चाहता था लेकिन उसके पास पैसे नहीं थे। देने की कला में निपुण उस युवा ने उत्कल विश्वविद्यालय भुवनेश्वर से रसायन विज्ञान में एम.एससी किया। स्थानीय कॉलेज में एक व्याख्याता की नौकरी की। अपने व्यक्तिगत सुखों का त्यागकर अपने जरुरतमंद सहपाठियों को आर्थिक सहायता देने एवं अपने परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण व उनको पढ़ाने के साथ-साथ प्राइवेट ट्यूशन भी करता। यह बात 1987-1997 की है।

वह दूरदर्शी युवा अपनी कुल जमा पूँजी 5000 रुपये, जो उस वक्त की लगभग 100 अमरीकी डॉलर के बराबर थी, उससे 1992-1993 में किराये के मकान में अपनी दो संस्थाएँ खोल लीं। आज उस उत्साही और त्यागी युवा की दो संस्थाएँ जिनमें एक कीट तकनीकी विश्वविद्यालय है जहाँ पर आज लगभग 21,000 छात्र पूरे भारत और अनेक देशों के पढ़ते

हैं। आज कीट भारत की एक गौरवशाली तकनीकी संस्था है। दूसरी संस्था कीस आज पूरे विश्व की सबसे बड़ी अनोखी संस्था बन चुकी है जहाँ पर विश्व के सबसे बड़े आदिवासी आवासीय विद्यालय में कुल 20,000 आदिवासी बच्चे समस्त अत्याधुनिक आवासीय सुविधाओं के साथ रहते हैं और के.जी. से लेकर पी.जी.तक नि:शुल्क पढ़ते हैं। कीस का लक्ष्य है भारत के कुल 10 मिलियन आदिवासी बच्चों को 2020 तक पूरी तरह से शिक्षित बनाना।

जो अनाथ बालक स्वयं घोर आर्थिक संकटों में पला-बढ़ा, वह अपने गांव को भी आज भारत का एक आदर्श गाँव बना चुका है, जहाँ पर आज शहर की तमाम सुविधाएँ उपलब्ध हैं। सच तो यह भी है कि उस उत्साही विदेह युवा ने कला, संस्कृति, फिल्म, साहित्य, अध्यात्म और जीवन के अनेकानेक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को अपने ही बलबूते पर समृद्ध बना दिया है। वह कर्मयोगी युवा आज प्रति माह अपने कुल 40 गरीब दोस्तों को रोजगार दिलाने में सहायता करता है जबकि

प्रतिमाह अपने अन्य 40 साथियों को अपनी ही विश्व की दो अनोखी संस्थाओं में नौकरी देता है। वह व्यक्ति जिसने सबके लिए इतना कुछ किया, इतना कुछ दिया, वह स्वयं एक सामान्य व्यक्ति का औसत जीवन जीता है। दो कमरे वाले एक किराये के मकान में रहता है। उसके नाम पर आज भी न कोई बैंक खाता है और न ही कोई बैंक बैलेंस। वह आज भी बैचलर लाइफ जी रहा है। उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है बिना किसी जाति, लिंग, धर्म के भेद-भाव के बिना हजारों गरीब और असहाय बच्चों की सहायता करना। आर्थिक सहायता करना उसका शौक है। गरीब, लाचार और बेबस बच्चों के चेहरे पर उसे साक्षर बनाकर मुस्कुराहट लाना है। उस व्यक्ति को देने की कला में विश्वास है, शौक है और 17 मई, 2013 से इस ''देने की कला'' का वास्तविक प्रचारक बनकर आजीवन कार्यरत है। सच तो यह भी है कि उस असाधारण व्यक्तित्व के धनी सादगी से परिपूर्ण महामानव को देने की कला विरासत में मिली है जिसे वह मौन रूप में अपने बाल्यकाल से सीखा और अपनाया। वह व्यक्ति जिसका पारदर्शी व्यक्तित्व पूरे विश्व के लिए अनुकरणीय एवं वंदनीय बन चुका है वह कोई और नहीं अपितु कीट-कीस के संस्थापक डॉ. अच्युत सामंत हैं, जिन्हें दुनिया आज निर्विवाद रूप में एक दूरदर्शी शिक्षाविद, विश्व आदिवासी समुदाय का जीवित मसीहा, विश्व का सबसे बड़ा नि:स्वार्थ सच्चा करार कर चुका है और ये कीट-कीस के संस्थापक के साथ-साथ कीस फाउण्डेशन इंडिया और कीस फाउण्डेशन यू के आजीवन संस्थापक हैं।

रूपांतरण: अशोक पाण्डेय

01 जनवरी, 2014

विषय-सूची

- श्रीजगन्नाथाष्टकम् 21
- स्कन्दपुराण में उत्कल एवं महाप्रभु जगन्नाथ 25
- श्रीमन्दिर 29
- श्रीमन्दिर कला और वास्तुशिल्प 32
- महाप्रभु जगन्नाथ के अनेक वेष 35
- महाप्रभु जगन्नाथ की अपने भक्तों पर कृपा 40
- महाप्रभु का नव कलेवर 65
- महाप्रभु की रथयात्रा की परम्परा 80
- रथ-निर्माण 88
- महाप्रभु की प्रसिद्ध अन्य यात्राएँ एवं पर्वोत्सव 77
- विशिष्ट महत्त्व के स्थल एवं मंदिर 95
- पुरी शहर के विभिन्न मठ 99
- कुछ प्रमुख स्थल 103
- प्रमुख झलकियों से 106
- भक्ति गीत 108

श्रीजगन्नाथाष्टकम्

कदाचित् कालिन्दीतट-विपिन-संगीत करवो
मुदाभीरी-नारी-वदन कमलास्वाद-मधुपः।
रमाशम्भुब्रह्माऽमरपतिगणेशार्चितपदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।। 1 ।।

कभी यमुना के तटीय वन में मधुर गीत गाते हुए, कभी भ्रमर की तरह गोपियों के मुख-कमल का रसास्वादन करते हुए तथा जिनके चरणों को लक्ष्मी, शंकर, ब्रह्मा और गणेश वन्दना करते हें, ऐसे सबके स्वामी महाप्रभु जगन्नाथ मुझे दर्शन दें।

Once you appeared in the woods. On the bank of Kalandi. Dancing to the tune of the sweet concert. Seeking nectar from the lotus faces of cowherd women. Your feet adored by Laxmi, Siva, Indra and Ganesh. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

भुजे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे
दुकूलं नेत्रान्ते सहचर कटाक्षं-विदधते।
सदा श्रीमद् वृन्दावन वसति लीला-परिचयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।। 2 ।।

जो अपने दाएँ हाथ में बाँसुरी धारण करते हैं, जिनके सिर पर मोर के पंखवाला मुकुट हो, जो पीला वस्त्र धारण करते हों, जो अपने मित्रों पर कटाक्ष करते हों, जो हमेशा वृन्दावन में रहकर अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हों, हे ऐसे सबके स्वामी महाप्रभु जगन्नाथ, मुझे दर्शन दें।

Holding flute in your hand. Head bedecked with peacock tall. And the yellow silk in the waist. Glancing at your companions. All the time you bask in the glory. And perform leelas in the Vrindavan. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादन्तः सहज बलभद्रेण वलिना।
सुभद्रा मध्यस्थः सकल सुरसेवाऽवसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।। 3 ।।

हे महान् नील समुद्रवर्णा तेजस्वी, नीलशैल पर अपने बड़े भाई बलभद्र तथा बहन सुभद्रा के साथ निवास करने वाले, सभी देवों को अपनी सेवा का अवसर देने वाले, हे सबके स्वामी महाप्रभु जगन्नाथ, मुझे दर्शन दें।

Close by the ocean on the shining blue mountain. Sharing he sanctum santorum with the mighty Balabhadra. And Subhadra seated at the centre, you offer chances to the deities. For paving obeisance. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

कृपापारावारः सजलजलदश्रेणि रुचिरो
रमावाणीरामः स्फुरदमलपद्मे क्षणमुखैः।
सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगणशिखा गीत चरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।। 4 ।।

हे कृपासिन्धु! घने मेघ स्वरूप वाले, लक्ष्मी और सरस्वती के साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करने वाले, तेज, स्वच्छ नयन-कमल वाले, देवताओं द्वारा पूजित होने वाले, श्रुतियों में वर्णित अच्छे चरित्र वाले, हे महाप्रभु संसार के स्वामी! मुझे दर्शन दें।

Oh ocean of compassion. Whose form resembles a range of thick clouds. Who treks his way with Laxmi and Saraswati. Whom Lord of the deities adore with vedic chanting, waving of flames and reading His leelas in rhyme. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

रथारूढ़ो गच्छन् पथिमिलित-भूदेवपटलैः
स्तुतिः प्रादुर्भावं प्रतिपदं मुपाकर्ण्य सदयः।
दयासिन्धुर्बन्धुः सकलजगतां सिन्धुसुताया
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।। 5 ।।

रथ पर विराजमान होते समय जिनकी ब्राह्मणों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, जो भक्तों की प्रार्थना सुनते हैं, जो दयालु हैं, लोकबन्धु हैं, दयासागर हैं, वही हे महाप्रभु जगन्नाथ! संसार के स्वामी, मुझे दर्शन दें।

Ascending the chariot when you proceed. Monarchs throng on your pathway. Hearing the burden of their hymns with compassion. Ocean of grace, the friend of universe, being merciful (to the ocean). You have chosen your adobe ashore. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

परंब्रह्मापीढ्यः कुवलयदलोत्फुल्ल नयनो
निवासी नीलाद्रौ निहित चरणोऽनन्तशिरसि।
रसानन्दो राधा सरसवपुरालिंगनसुखो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।। 6 ।।

हे परमब्रह्म सुखकारी, कमल दल नयन वाले, आनन्दसागर, आनन्दपथ चेतना के स्वामी, भगवती राधा के साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करने वाले, हे महाप्रभु, संसार के स्वामी मुझे दर्शन दें।

Holding fast to your all-pervading self. You who have lotus-petalled eyes, blissful. Reside in Niladri with your feet resting on Ananta naga. Basking in blissful love you are in ecstasy. While embracing the elegant shape of Radhika. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

न वै प्रार्थ्यं राज्यं न च कनकमाणिक्य विभवं
न याचेऽहं रम्यां निखिलजनकाम्यां वरवधूम्।
सदाकाले काले प्रमथपतिना गीत चरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।। 7 ।।

मैं राज-पाट नहीं माँगता, न ही सोने-चांदी की चमक-दमक, मुझे दूसरों की तरह कंचन-कामिनी भी नहीं चाहिए, सभी युगों में शिव-शंकर जिसकी लीलाओं का गुणगान करते हैं, हे महाप्रभु! संसार के स्वामी मुझे दर्शन दें।

Neither I crave for kingdom nor for gold, fuby and wealth. I do not pray for the most beautiful woman coveted by all. Your

leelas is sung in every age by Shiva Shankar. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

हर त्वं संसारं द्रुततरमसारं सुरपते
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते।
अहो दीनानाथो निहितमचलं निश्चितपदं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ 8 ॥

हे देवों के देव! आप हमारे सांसारिक कष्टों को यथाशीघ्र दूर करें। हे यदुनन्दन! हमें पाप–मुक्त करो। हे दीनबन्धु, हे अनाथों के नाथ, हे सबके स्वामी! महाप्रभु जगन्नाथ, मुझे दर्शन दें।

Lord of the deities, save me from the clutches of this ephemeral world. Oh Lord of Yadus, free me from the unearable burden of sins. You are the Lord of the sufferers. You grant graciously the touch of your lotus feet. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

स्कन्दपुराण में उत्कल एवं महाप्रभु जगन्नाथ

भगवद्गीता के 15वें अध्याय में महाप्रभु जगन्नाथ को संसार के स्वामी के रूप में माना गया है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में श्रीराम विभीषण को जगन्नाथ जी की पूजा करने की सलाह देते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मपुराण और मत्स्य पुराण में इनकी चर्चा है, लेकिन स्कन्दपुराण में इनकी विस्तृत चर्चा है। स्कन्दपुराण में तो महाप्रभु के साथ–साथ उत्कल–महिमा का सविस्तार वर्णन है।

स्कन्दपुराण में उत्कल महिमा– प्रसंगानुसार मुनियों ने जैमिनि जी से प्रश्न किया– जहाँ काष्ठ प्रतिमा के रूप में साक्षात् महाप्रभु जगन्नाथ जी विराजमान हैं, वह पुरुषोत्तम क्षेत्र कहाँ है? जैमिनि ने उत्तर दिया कि उत्कल नाम से प्रसिद्ध एक परम पावन देश हैं, जहाँ अनेक तीर्थ और बहुत से पवित्र मन्दिर हैं। वह प्रदेश दक्षिण समुद्र तट पर बसा है। उसमें रहने वाले पुरुष सदाचार के आदर्श हैं। वहाँ के ब्राह्मण उत्तम आचार और स्वाध्याय से सम्पन्न हो हमेशा यज्ञ कर्म में लीन रहते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में यज्ञ और वेदाध्ययन की प्रवृत्ति वहीं से होती है। वहाँ के निवासी ब्राह्मण वेद–शास्त्रों के प्रवर्त्तक हैं। वह देश 18 विद्याओं का खजाना है। वहाँ जगन्नाथ जी की आज्ञा से घर–घर में लक्ष्मी का निवास है। उस देश के निवासी लजालु, विनयशील, चिन्तारहित, रोगमुक्त, मातृ–पितृ भक्त, सत्यवादी तथा विष्णुभक्त हैं। वहाँ सभी जगन्नाथ भक्त हैं। उस प्रदेश के लोग दीर्घजीवी हैं। स्त्रियाँ पतिव्रता, सुशीला, धर्म–परायणा, लज्जा और सदाचार से विभूषित, रूपवती, सब प्रकार के आभूषणों से अलंकृत, कुल, शील और वर्ण के अनुसार आचार–विचार का पालन करने वाली हैं।

वहाँ के क्षत्रिय कर्त्तव्यपालक हैं। वे प्रजा की रक्षा में दक्ष हैं। वे दान देने में उदार और सभी शास्त्रों के जानकार हैं। वे अपने आश्रितों को उनकी कामना से कहीं अधिक दान देते हैं।

वहाँ के वैश्य कृषि, वाणिज्य और गोरक्षा का कार्य करते हैं। वे अपनी भक्ति और धन से देवता, ब्राह्मण और गुरू को खुश रखते हैं। वहाँ एक

घर पर पधारे याचक को दूसरे घर पर जाने की आवश्यकता नहीं होती। उस देश के शूद्र भी संगीत, साहित्य और कला में कुशल हैं। वे प्रिय वचन बोलते हैं। वे मन, वचन और कर्म से ब्राह्मणों की सेवा में लगे रहते हैं।

स्कन्दपुराण में महाप्रभु जगन्नाथ– मुनियों के प्रश्न पूछने पर जैमिनि जी ने बताया कि सतयुग में इन्द्रद्युम्न नामक एक श्रेष्ठ राजा हुआ। उसका जन्म सूर्यवंश में हुआ था। वह ब्रह्मा जी से पाँच पीढ़ी नीचे था। सह सत्यवादी, सदाचारी, शुद्ध और सात्विक राजा था। प्रजा को अपनी सन्तान समझ कर वह सदा न्यायपूर्वक जीवन व्यतीत करता था।

एक दिन राजा ने अपने पुरोहित से कहा- आप उस क्षेत्र का पता लगाइए, जहाँ महाप्रभु जगन्नाथ के वह साक्षात् दर्शन कर सकें। उसी समय एक व्यक्ति आया और अपने आप यह बताया कि भारत वर्ष में उड्र नाम से एक प्रसिद्ध देश हैं। उस देश में दक्षिण समुद्र के किनारे श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र है, जहाँ नीलांचल पर्वत है। वह प्रदेश चारों ओर से वनों से घिरा है। उसके बीच में एक कल्पवृक्ष है, जिसके पश्चिम में रोहिणी नामक एक कुण्ड है। उसके जल को स्पर्श करने से ही मोक्ष मिल जाता है। उसके पूर्वी तट पर इन्द्रनीलमणि की बनी हुई भगवान वासुदेव की प्रतिमा है, जो साक्षात् मोक्ष प्रदान करने वाली है। उस कुण्ड में स्नान करके जो महाप्रभु जगन्नाथ जी के दर्शन करता है, वह मोक्ष पाता है। वहाँ शबरद्वीप नाम का एक आश्रम है। उस आश्रम से एक रास्ता उनके मन्दिर तक जाता है। वहाँ महाप्रभु जगन्नाथ जी शंख, चक्र, गदा, पद्म धारी साक्षात् विराजमान हैं। यह कहकर वह व्यक्ति अन्तर्ध्यान हो गया।

पुरोहित ने सलाह दी कि हम सब चलकर वहीं बस जाएँ, मानव जीवन की सफलता इससे बड़ी क्या हो सकती है? राजा इन्द्रद्युम्न ने पुरोहित की बात मान ली। पुरोहित का छोटा भाई विद्यापति समस्त विश्वसनीय पुरुषों को लेकर उड्र देश को चल दिया। महानदी को पार कर वह एकाम्र वन पहुँचा। महाप्रभु जगन्नाथ की खोज करते हुए वह नीलांचल जा पहुँचा। वहाँ से आगे कोई रास्ता नहीं था। तभी उसे अलौकिक वाणी

सुनाई पड़ी। उस आवाज को सुनकर वह पीछे-पीछे चल दिया। कुछ दूर पर उसे शबरद्वीप आश्रम मिला। वहाँ भक्तों को उसने प्रणाम किया। ठीक उसी समय अपनी पूजा समाप्त करके विश्वावसु वहाँ आया। यह देखकर ब्राह्मण बहुत खुश हुआ। उसने अपना परिचय देते हुए बताया कि वह वहाँ नीलमाधव के दर्शन के लिये आया है। उसने यह भी बताया कि जब तक वह अवन्ती के राजा को नीलमाधव के विषय में बतला न देगा, तब तक वह निराहार ही रहेगा। उस ब्राह्मण ने नीलमाधव के दर्शन की इच्छा प्रकट की। विश्वावसु ने पहले तो उस स्थान को बताने से मना कर दिया। विद्यापति नामक ब्राह्मण ने देखा कि विश्वावसु की ललिता नाम की एक रूपवती कन्या है। उसके पास वह गया और सीधे उससे विवाह करने का प्रस्ताव रख दिया। कालान्तर में ललिता और विद्यापति का विवाह हो गया और अब वे दोनों सूखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

एक दिन विद्यापति ने ललिता से कहा कि वह अपने पिता से पूछे कि नीलमाधव के पूजास्थल तक वह कैसे जा सकता है। उसने ललिता को यह भी चेतावनी दी कि उसकी बात अगर वह नहीं मानेगी तो वह उसे छोड़कर चला जाएगा।

पिताजी के आने पर उदास ललिता ने सारी बात बताई। विश्वावसु अब तो लाचार था। वह एक शर्त पर विद्यापति को नीलमाधव के दर्शन कराने को तैयार हो गया। उसने कहा कि वहाँ जाते और आते समय विद्यापति की आँखों पर पट्टी बंधी रहेगी। वह जैसे ही नीलमाधव के दर्शन करेगा, पुनः उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी जाएगी। हुआ ऐसा ही, लेकिन ललिता ने अपने पति के गमछे के दोनों छोरों पर सरसों बाँध दी जो आते-जाते समय गिरती रही। विद्यापति नीलमाधव के दर्शन कर लौट आया। कुछ दिनों बाद सरसों के बीज से अंकुर निकले और बड़े होकर पीले फूलों की पगडंडी स्पष्ट दिखाई देने लगी। विद्यापति अब स्वयं रास्ता पहचानकर अकेले निकला और नीलमाधव के दर्शन कर उस स्थल का पता पाने में सफल हो गया। वह लौटकर अवन्ती आया और

राजा को समाचार सुनाया। राजा इन्द्रद्युम्न उनके साथ नीलांचल आए। जब वे उस स्थान तक पहुँचे, तब तक गोपनीयता नष्ट होते ही नीलमाधव अन्तर्ध्यान हो चुके थे। राजा को केवल निराशा ही हाथ लगी।

एक रात राजा को एक दिव्यवाणी सुनाई दी कि समुद्र तट पर उन्हें एक पवित्र दारू लट्ठा तैरता मिलेगा। उसकी देव प्रतिमा बनाकर वह उन्हें प्रतिष्ठित करें। कहा जाता है कि राजा इन्द्रद्युम्न ने जल में तैरते हुए उस काष्ठ को लाकर जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा की प्रतिमाएँ बनवाईं। इन्द्रलोक जाकर ब्रह्माजी को साथ लाकर उन विग्रहों में प्राण-प्रतिष्ठा करवाई। आज भी श्री मन्दिर प्रांगण का कल्पवट आदि इस पौराणिक कथा को सत्य रूप प्रदान करते हैं।

उड़ीसा के चार क्षेत्र (वैष्णव धर्मानुसार)

शंख क्षेत्र	-	**पुरी,**	**चक्र क्षेत्र**	-	**भुवनेश्वर**
गदा क्षेत्र	-	**जाजपुर,**	**पद्म क्षेत्र**	-	**कोणाक**

श्रीमन्दिर

आज के श्रीमन्दिर का निर्माण 12वीं शताब्दी में गंग वंश के प्रतापी राजा चोलगंगदेव ने प्रारम्भ किया था। लगभग 1000 वर्ष पुराना यह श्रीमन्दिर कलिंग स्थापत्य कला और शिल्पकला का बेजोड़ उदाहरण है। इसकी ऊँचाई 214 फीट और 8 ईंच है। इसका आकार पंचरथ आकार है। इस मन्दिर के चारों तरफ दीवारें हैं, जिसे मेघनाद प्राचीर कहते हैं। इसकी ऊँचाई 20 फीट से 24 फीट है।

श्रीमन्दिर के चार महाद्वार हैं। ये हैं- पूर्व दिशा में, पश्चिम दिशा में, उत्तर दिशा में और दक्षिण दिशा में। पूर्व दिशा के महाद्वार को सिंहद्वार नाम से जाना जाता है और यह महाद्वार धर्म का प्रतीक है। पश्चिम दिशा का महाद्वार व्याघ्र द्वार के नाम से जाना जाता है और यह वैराग्य का प्रतीक है। उत्तर दिशा का द्वार हस्तीद्वार के नाम से जाना जाता है और यह ऐश्वर्य का प्रतीक है। दक्षिण का द्वार जिसे अश्वद्वार के नाम से जाना जाता है, ज्ञान का प्रतीक है।

श्रीमन्दिर के चार भाग हैं- विमान, जगमोहन, नाटमण्डप और भोगमण्डप। महाप्रभु जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा व सुदर्शन, जहाँ विराजमान हैं, उसे रत्नवेदी कहा जाता है। रत्नवेदी 16 फीट लम्बी और 4 फीट ऊँची है। इस वेदी पर बायें से दायें श्री बलभद्र जी, श्री सुभद्रा जी और श्री जगन्नाथ जी और सुदर्शन के विग्रह हैं। साथ ही, जगन्नाथ जी की बायीं तरफ धातुमूर्ति के रूप में भूदेवी (सरस्वती जी) और दाहिनी तरफ श्रीदेवी (लक्ष्मी जी) विराजमान हैं। तीनों विग्रहों में बलभद्र जी यहाँ रुद्र के प्रतीक हैं, सुभद्रा जी आदिशक्ति की प्रतीक हैं और महाप्रभु जगन्नाथ जी विष्णु के प्रतीक हैं। इसी क्रम में तीनों विग्रह क्रमश: भूत, वर्तमान और भविष्य के प्रतीक माने जाते हैं। सुदर्शन चक्र नारायण का प्रतीक माना जाता है।

श्रीमन्दिर में प्रतिदिन अपनाई जाने वाली पूजा विधि को गोपाल अर्चना विधि कहते हैं। जिसका शुभारम्भ राजा प्रतापरुद्र देव ने किया था। 1955

से श्रीमन्दिर में प्रतिदिन 5 बार पूजा होती आई है, दिन में तीन बार और रात में दो बार। जगन्नाथ जी की पूजा बीजमंत्र द्वारा, बलभद्र जी की पूजा 12 वासुदेव मंत्र द्वारा तथा सुभद्रा जी की पूजा भुवनेश्वरी मंत्र द्वारा होती है। पूजा के समय जल श्री विमला देवी के कुएँ से लाया जाता है।

ऐसा माना जाता है कि महाप्रभु जगन्नाथ का सम्बन्ध भारत के चारों धामों जैसे बदरीनाथ, द्वारका, रामेश्वर और जगन्नाथ पुरी– सभी से है। ये बदरीनाथ में स्नान करते हैं, द्वारका में श्रृंगार करते हैं, पूरी में अन्न भोग करते हैं और रामेश्वर में शयन करते हैं।

श्रीमन्दिर की पाकशाला और महाप्रसाद

श्रीमन्दिर की पाकशाला विश्व की सबसे बड़ी पाकशाला मानी जाती है। यहाँ एक बार में 45 मिनट के भीतर 10,000 लोगों के लिए भोजन बन सकता है। यहाँ लगभग 600 रसोइये (सूपकार) हैं।

यहाँ के 200 चूल्हे 24 घंटे जलते रहते हैं। महाप्रसाद के पूर्व प्रसाद रूप में दूध, दही, घी, चावल, नारियल, चीनी, फल, सब्जी, दाल आदि से 56 प्रकार के भोग तैयार किये जाते हैं और सबसे पहले उस प्रसाद को महाप्रभु जगन्नाथ को निवेदित किया जाता है, फिर बिमला देवी को। अब यह महाप्रसाद बन जाता है, जिसे 'सामखुदी भोग' कहा जाता है।

महाप्रसाद अपने आप में आयुर्वेद सम्मत तथा स्वास्थ्यप्रद होता है। यह सभी प्रकार की बीमारियों को दूर करता है। जगन्नाथ जी की ऐसी महिमा है कि यहाँ से कोई भी व्यक्ति महाप्रसाद पाए बिना नहीं लौटता। ऐसी मान्यता है कि जब दो जातियों के बीच महाप्रसाद का आदान–प्रदान होता है तब दोनों का सम्बन्ध अटूट हो जाता है। मन्दिर के आनन्द बाजार में महाप्रसाद की बिक्री होती है। यह विश्व का सबसे बड़ा उन्मुक्त होटल है।

नवधा भक्ति

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद–सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म–निवेदन।

सेवायत

श्री जगन्नाथ जी की सेवा, पूजा और अर्चना के लिए सैंकड़ो वर्षों से 'सेवायत' अथवा सेवक रखने की परम्परा है। ये सेवक लगभग 36 प्रकार के हैं। श्रीमन्दिर के सत्व लिपि ग्रन्थ में 119 प्रकार के सेवकों का वर्णन है। वास्तव में, श्री जगन्नाथ जी के सेवकों की संख्या बहुत ज्यादा है। ये सेवक श्री जगन्नाथ जी की सेवा–पूजा करते हैं। पीढ़ी–दर–पीढ़ी से इसे ये अपना परम कर्त्तव्य मानकर यथाविधि अपने कर्त्तव्य का पालन करते आ रहे हैं। ये सेवक श्री मन्दिर के साथ–साथ इस मन्दिर के अंतर्गत अन्य मन्दिरों में स्थित देव–देवियों की पूजा–अर्चना आदि भी करते हैं।

प्रत्येक सेवक के लिए अलग–अलग सेवा–कार्य होता है। नियमानुसार प्रत्येक सेवक को सिर्फ अपना सेवाकार्य करना पड़ता है। सेवकों को उनके सेवाकार्य के लिए वेतन देने का विधान नहीं है। श्री जगन्नाथ जी और अन्य देवियों की पूजा, अर्चना, भोग, प्रसाद आदि से प्राप्त आय को सेवक आनन्दपूर्वक ग्रहण करते हैं। दो प्रकार की सेवाएँ हैं– मुख्यतः राज सेवा और अन्यान्य सेवाएँ। सेवकों की संख्या लगभग 6,000 है।

पुरी के गजपति महाराज जी श्रीमन्दिर के प्रथम और प्रधान सेवक हैं। रथयात्रा के समय वे तीनों रथों को सोने के झाड़ू से साफ करते हैं। नव कलेवर के समय महाराज के हाथों से सुपारी ग्रहणकर दइता और ब्राह्मण दारू (काष्ठ) की खोज में निकलते हैं। श्रीमन्दिर के प्रमुख सेवकगण– राजगुरू, पाटयोषी, महापात्र, तलिछ महापात्र, भंडार मेकाप, पालिआ मेकाप, पुरोहित, मुदिरथ, पुष्पालक, बड़ पण्डा, महाजन, प्रतिहारी, खुंटिया, पति महापात्र, गरावडु, विमानवडु, दइता, गोछिकार, सुना गोस्वामी, महासुआर, पाइक, रोष पाइक, पुराण पंडा, चित्रकार, रूपकार, घंटुआ आदि हैं।

श्रीमन्दिर कला और वास्तुशिल्प

वास्तुशिल्प शास्त्र मन्दिर निर्माण विधि से सम्बन्धित एक प्राचीन और वैज्ञानिक शास्त्र है। इसका उद्‌गम स्थापत्य वेद से हुआ है, जो चार वेदों में से एक अथर्ववेद का हिस्सा है। रामायण में सात या आठ तल्ले भवनों का वर्णन है। महाभारत में मायासभा के निर्माण का वर्णन है, जिसमें माजा और इन्द्रप्रस्थ का निर्माण विश्वकर्मा के द्वारा हुआ था, जिसने द्वारका का निर्माण किया था। कश्यप शिल्प शास्त्र, वृहद संहिता, विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र, समरांगन सूत्रधार, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, अपराजिता प्रवक्षा, जय प्रवक्षा, प्रणय मंजरी, वास्तुशास्त्र, मायावास्तु और भृगु संहिता आदि में मन्दिर आदि निर्माण का वर्णन है। ऋषि-मुनियों का भी वास्तु शिल्प शास्त्र को समृद्ध करने में बहुत बड़ा योगदान रहा है, जिनमें प्रमुख हैं- भृगु, बृहस्पति, शुक्र, कश्यप, वशिष्ठ, अत्रि, माजा, विश्वकर्मा, वराहमिहिर और भोज आदि।

19वीं शताब्दी का अंत और 20वीं शताब्दी का प्रारम्भकाल पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावों में आ गया, जिसके फलस्वरूप वैदिक जीवन यापन करने वाले लोगों को पूरी तरह से निराश कर दिया, लेकिन परिवर्तन के चक्र ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक बार फिर हमारी गौरवशाली प्राचीन भारतीय संस्कृति को जीवनदान दिया, जिसके अन्तर्गत अनेक मन्दिर आदि का निर्माण वास्तु शिल्प शास्त्र के आधार पर शुरू हुआ।

वास्तुशिल्प शास्त्र अपने आप में विज्ञान, कला, ज्योतिष आदि का

सम्मिश्रण है। जानने वाले लोग जानते हैं कि वर्तमान श्रीमन्दिर का निर्माण गंग वंश के प्रतापी राजा चोलगंग देव के द्वारा 12वीं शताब्दी में हुआ था। यह मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला का बेजोड़ उदाहरण है। जहाँ तक वास्तुशिल्प शास्त्र के आधार पर श्रीमन्दिर के मूल्यांकन की बात है, वास्तुशिल्प शास्त्र के करीब-करीब सभी मानदण्डों का इसके निर्माण में पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

वास्तुशिल्प शास्त्र मानता है कि मन्दिर का निर्माण खुले विशाल प्रांगण में होना चाहिए। श्रीमन्दिर 10 एकड़ में फैले खुले विशाल प्रांगण में अवस्थित है। वास्तुशिल्प शास्त्र के अनुसार मन्दिर के मुख्य प्रवेश द्वार चारों दिशाओं में खुले होने चाहिएं, जिसमें पूर्व दिशा में अत्युत्तम माना गया है। श्रीमन्दिर के भी चार द्वार हैं, जिसमें पूर्व स्थित सिंहद्वार मुख्यद्वार है। वास्तुशिल्प शास्त्र मानता है कि पाकशाला पूर्वी-दक्षिणी कोने पर होनी चाहिए। श्रीमन्दिर की पाकशाला भी श्रीमन्दिर के पूर्वी-दक्षिणी कोने पर स्थित है। वास्तुशिल्प शास्त्र के अनुसार मुख्यद्वारों के सामने कुछ न कुछ मूर्तियाँ होनी चाहिएं। श्रीमन्दिर के सभी द्वारों पर अलग-अलग मूर्तियाँ निर्मित हैं, जिनमें दोनों तरफ सिंह, अश्व, व्याघ्र और हस्ती हैं। वास्तुशिल्प शास्त्र मानता है कि मन्दिर के ऊपर सुन्दर मूर्तियाँ, आकृतियाँ आदि खुदी होनी चाहिएं। श्रीमन्दिर के बाहरी भागों पर भी सुन्दर मूर्तियाँ आदि गढ़ी हुई हैं।

वास्तुशिल्प शास्त्र के अनुसार नीम, पीपल, तुलसी, नारियल, पान का पत्ता, सुपाड़ी, चन्दन, आम, बरगद के वृक्ष पवित्र माने जाते हैं। श्रीमन्दिर की रत्नवेदी पर प्रतिष्ठित तीनों विग्रह नीम काष्ठ के ही हैं। पूजा और पर्यावरण की सुरक्षा आदि से सम्बन्धित उपर्युक्त सभी पवित्र पेड़-पौधों को श्रीक्षेत्र में देखा जा सकता है।

वास्तुशिल्प शास्त्र के अनुसार, देव-प्रतिमाओं के मन्दिर निर्माण आदि में वैसे वृक्षों की लकड़ियों की चर्चा है, जिन्हें नर वृक्ष और मादा वृक्ष मानते हैं। अगर वृक्ष की पत्तियों में सिराओं की संख्या बायीं तरफ की तुलना में दाहिनी तरफ में ज्यादा होती है तो उसे नर वृक्ष माना जाता है।

ठीक उसी प्रकार सिराओं की संख्या दाहिनी तरफ की तुलना में बायीं तरफ जब ज्यादा होती है, तब उस वृक्ष को मादा वृक्ष माना जाता है। इसी प्रकार सिराओं की संख्या के आधार पर भी नर और मादा वृक्षों की पहचान की जाती है और मन्दिर के दरवाजों आदि पर उसी प्रकार की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। श्रीमन्दिर के सभी देव-देवियों के दरवाजों पर अर्थात् देवताओं के दरवाजों पर पुरुष जाति के वृक्षों की लकड़ियों का प्रयोग किया गया है तथा देवियों के दरवाजों पर मादा जाति के वृक्षों की लकड़ियों का प्रयोग किया गया है।

इसी प्रकार वास्तुशिल्प शास्त्र पत्थरों की पुरुष और स्त्री जाति की भी बात बतलाता है। इसी पहचान पत्थरों पर विशेष किस्म के हथियारों से चोट करके की जाती है। पुरुष जाति के पत्थरों का प्रयोग देव प्रतिमाओं के निर्माण में और नारी जाति के पत्थरों का प्रयोग देवियों की प्रतिमाओं के निर्माण में किया जाता है। श्रीमन्दिर की मूर्तियाँ इस आधार पर भी खरी उतरती हैं।

इसी प्रकार श्रीक्षेत्र में अवस्थित मठों, तालाबों, नालाओं, समुद्र तट और नदी आदि का मूल्यांकन करने पर पता चलता है कि पूरा श्रीक्षेत्र और श्रीमन्दिर वास्तुशिल्प शास्त्र के आधार पर ही निर्मित है, लेकिन जिस तरह से यहाँ पूजा-अर्चना की कोई सुनिश्चित विधि नहीं है, फिर भी अत्युत्तम व्यवस्था मानी जाती है, ठीक उसी प्रकार वास्तुशिल्प शास्त्र की जानकारी के अभाव में भी यहाँ की सम्पूर्ण व्यवस्था अपने आप महाप्रभु की कृपा से वास्तुशिल्प शास्त्र पर ही निर्मित है।

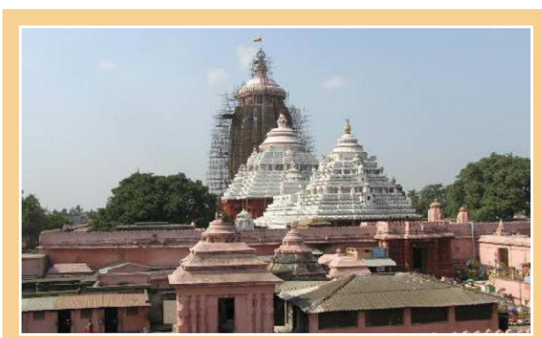

महाप्रभु जगन्नाथ के अनेक वेष

महाप्रभु जगन्नाथ अनेकानेक त्यौहारों और उत्सवों पर अनेक वेष धारण करते हैं, या यों कहें कि उन्हें अनेकानेक वेषों में सुसज्जित किया जाता है। इनमें प्रमुख वेष हैं-

नागार्जुन, श्रद्धा, बड़ा शृंगार, त्रिविक्रम, वामन, नृसिंह, परशुराम, हाथी, सोना, वनभोजी, कालियदमन, प्रलम्बासुर, कृष्ण-बलराम, राजा, राधा-दामोदर, पद्म, गज-उद्धारन, चाचेरी, चंदनलागी, लक्ष्मी- नारायणप, बांक-चूड़, राज-राजेश्वर, रघुनाथ, नव यौवन और हरिहर वेष आदि।

श्री श्री महाप्रभु जगन्नाथ ऐश्वर्य और माधुर्य के विग्रह हैं। विभिन्न यात्राओं, पर्वों, रीतियों एवं नीतियों के अवसर पर इन्हें महिमामय रूप में मण्डित किया जाता है। प्रभु जगन्नाथ जी को रसिक शेखर, लीलाधर, राजाधिराज एवं पुरुषोत्तम कहा जाता है।

युगों से लोक सम्मत व वेद सम्मत सिद्धांतों का इनके साथ प्रचलन है। अतः उनके वेष में ज्ञान का जितना प्रभाव है, उतना ही लोककला का सम्मिश्रण भी है। ईश्वरीय छटा के साथ लोकाचार प्रभु की लीला को हृदयग्राही बना देता है। हमारे शास्त्रों में विभिन्न देवताओं के विशेष रूपों का वर्णन है। राधाकृष्ण, वामन, नृसिंह आदि के निर्दिष्ट वेष रूप उल्लिखित हैं।

जगन्नाथ जी का मूल रूप दारू वेष है, परन्तु रीति-नीति व परम्परा में उनके अनेकानेक रूप प्रचलित हैं। इनमें अधिकांश वेष अवतार के आधार पर होते हैं। इसके अलावा रात-दिन चौबीस घंटे में भी उनके 24 वेष प्रचलित हैं।

दरअसल में वेष विशेष मानसिकता, मनोवैज्ञानिकता, भावावस्था और प्रकृति के प्रतीक होते हैं। अतः जगन्नाथ जी के ये वेष हमारे मन में तदनुरूप भावों को पैदा करने में सहायक होते हैं।

बड़ा शृंगार वेष- रात में श्री जगन्नाथ जी का अतिप्रिय वेष प्रतिदिन श्रृंगार वेष होता है। शयन से पूर्व सुसज्जित इस वेष को देखकर भक्त मन विभोर हो उठता है। देवदासी प्रस्तुत हो रही है, गीतगोविन्द गायन के

लिए, जगन्नाथ जी श्रृंगार कर रहे हैं मिलने के लिये। यह वेष महाप्रभु की लीला का अत्यन्त आकर्षक वेष माना जाता है। इसके बाद पौढ़ होती है। प्रभु का मिलन होता है। पट बंद हो जाते हैं। रात के 10-11 बजे के बाद इस वेष में प्रभु के दर्शन के लिए भक्त आतुरता के साथ प्रतीक्षा करते हैं।

हाथी वेष– इस वेष को गणेश वेष भी कहा जाता है। ज्येष्ठ पूर्णिमा देवस्नान पूर्णिमा भी कहलाती है। 108 कलश से महास्नान के बाद प्रभु जगन्नाथ जी यह वेष धारण करते हैं। परम्परा बताती है कि कभी गणपति भट्ट जैसे महान संत श्रीक्षेत्र आकर अतृप्त रह गए। वे गाणपत्य थे। जगन्नाथ जी को अपने आराध्य रूप में देखे बिना उनको शान्ति कहाँ। कहते हैं इसलिए जगन्नाथजी को गज रूप धारण करना पड़ा। तब से उनके गजवेष की परम्परा चल पड़ी है।

पद्म वेष– माघ शुक्ल प्रतिपदा से वसंत पंचमी के बीच बुध और शनि की रात्रि को सम्पूर्ण विग्रह पद्म मण्डित किया जाता है। उसी वेष में उनकी पहुड़ होती है। ज्ञान, ध्यान, साधना, कर्म, भक्ति और पवित्रता का प्रतीक है- पद्म। अत: पद्मवेष जगन्नाथजी के सारे हृदय का निचोड़ लेकर प्रस्फुटित होता है। विशेषकर इस वेष में प्रभु को अमृतोपम खीर का भोग लगाया जाता है। कहते हैं कि संत मनोहर दास उधर से जा रहे थे। तालाब में खिले पद्म देखकर उनके मन ने उनसे कहा- 'सारे कमल प्रभु को अर्पित कर दूँ तो वे कैसे दीखेंगे?' कहते हैं कि उस संकल्प के साथ तालाब के सारे पद्म खिल गए और जगन्नाथजी ने उन्हें खुशी-खुशी स्वीकार किया। भक्त की भावना की दृष्टि से पद्म वेष की परम्परा मानी जाती है।

चाचेरी वेष– फाल्गुन का महीना दोल गोविन्द जगन्नाथ के प्रतिनिधि बनकर जाते हैं। चतुर्दशी के दिन श्रीविग्रह को लाल वस्त्रों से मण्डित करते हैं। झूला झुलाते हैं और सुगंधित कुमकुम अबीर से अभिषेक करते हैं। अर्चना करते हैं। जगन्नाथ जी सामूहिक रूप से वसंतोत्सव में शामिल होते हैं।

सोना वेष– अनेक पर्वों और त्यौहारों के अवसर पर जगन्नाथ जी को स्वर्णाभूषणों से मण्डित करते हैं, लेकिन रथयात्रा के समय दशमी के दिन प्रभु की बाहुड़ा यात्रा होती है। उसके बाद रात्रि में स्वर्णालंकारों से उन्हें मण्डित किया जाता है। अनपुम सौन्दर्य की चरम सीमा ही नहीं रहती। यहाँ प्रभु का ऐश्वर्य मण्डित रूप देखकर भक्त धन्य हो जाते हैं। जगन्नाथजी, बलभद्र जी और सुभद्राजी- तीनों ऐश्वर्य के प्रतीक स्वर्ण को धारण करते हैं। यथार्थत: वे जगत के सम्राट के रूप में उस दिन विराजमान होते हैं।

कालियदमन वेष– भाद्रपद कृष्णपक्ष की एकादशी की रात में इस वेष में श्रीविग्रह को मण्डित किया जाता है। श्रीमुख के नीचे रक्तवस्त्र से घेर दिया जाता है, जबकि श्वेत चूल वस्त्र पर शोभा पाती है। मुखमण्डल पर राहु रेख और कपाल मस्तक पर मयूर सुशोभित होते हैं। कानों में स्वर्ण कुण्डल, भौहों पर स्वर्ण अलंकार के साथ-साथ स्वर्ण के भी चूर्ण कुंतल अति कमनीय लगते हैं। वक्ष पर पुष्पमाल और उसके अलावा अगणित अलंकारों से प्रभु की शोभा बढ़ती है। महाप्रभु के चरणों में सप्तफण विशिष्ट

कालियनाग रहता है। उसके विराट रूप महाप्रभु को आविष्ट किए रहता है। दाहिने हाथ में पद्मपुष्प और बायें हाथ में कालियानाग की पूँछ थामे रहते हैं।

चन्दन वेष– आषाढ़ और ज्येष्ठ महीने में लगभग 42 दिनों तक प्रभु जगन्नाथ को चन्दन का लेप लगाया जाता है, जिसे चन्दन वेष कहते हैं।

नवयौवन वेष– हाथी वेष अथवा गणेश वेष के बाद प्रभु 15 दिनों तक ज्वर पीड़ित (अणसर) में रहते हैं, उसके बाद उन्हें नवयौवन (नयी जवानी) वेष में रखा जाता है। नवयौवन दर्शन हेतु लाखों भक्त जगन्नाथ पुरी आते हैं। जिंदगी की जिंदादिली का यह पावन संदेश देता है।

प्रलम्भासुर वध वेष– श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की सुन्दर कथा है। इसके अन्तर्गत प्रलम्भासुर नामक एक राक्षस का वध बलराम ने किया था। इसीलिए बलभद्र जी को उसी वेष में सजाया जाता है, जिस वेष में उन्होंने राक्षस का वध किया था। प्रभु जगन्नाथ को भी उसी वेष में सजाया जाता है, जिसे प्रलम्भासुर वध वेष कहते हैं।

वामन वेष– प्रभु जगन्नाथ को भाद्र महीने के शुक्ल पक्ष के 12वें दिन वामन वेष में सजाया जाता है। पुराण की कथानुसार विष्णु के दस अवतारों में पाँचवाँ अवतार वामन अवतार माना जाता है, जिसमें वे बलि से वामन रूप में तीन पग धरती मांगकर उसका मानमर्दन करते हैं।

कृष्ण-बलराम वेष– भाद्र महीने के कृष्ण पक्ष के 13वें दिन प्रभु को कृष्ण-बलराम वेष में सुशोभित किया जाता है।

राजा वेष– प्रभु जगन्नाथ को आश्विन महीने के शुक्ल पक्ष के 10वें दिन राजा वेष में प्रतिष्ठित किया जाता है।

हरिहर वेष– भारत में वैष्णव और शैव दो प्रकार के धर्म के अनुयायी हिन्दू हैं। इसमें बलभद्र जी के शरीर और जगन्नाथ जी के शरीर के आधे हिस्सों को काले और आधे हिस्से को सफेद रूप में अर्थात् एक भाग विष्णु का और आधा हिस्सा अर्थात् एक भाग शिव का (सफेद भाग) में सजाया जाता है, जिसे हरिहर वेष कहा जाता है।

लक्ष्मी-नृसिंह वेष– कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष के 14वें दिन प्रभु को लक्ष्मी नृसिंह वेष में मण्डित किया जाता है।

नागार्जुन वेष– प्रभु जगन्नाथ के सभी वेषों में नागार्जुन वेष का अपना अलग और विशेष महत्व है। इस वेष का दूसरा नाम परशुराम वेष भी है। परशुराम विष्णु के दस अवतारों में छठे अवतार के रूप में आते हैं। वे मूलतः शिवभक्त थे। जगन्नाथ जी के वैष्णव और शैव दोनों रूपों के मेल को नागार्जुन वेष कहते हैं। 16 नवम्बर, 1994 को प्रभु को काफी दिनों के बाद नागार्जुन वेष में सुशोभित किया गया था।

श्रद्धा वेष– प्रभु को दशरथ, नन्द और वसुदेव पुत्र के रूप में जाना जाता है। अपने पूर्वजों को यह पुत्र 'प्रेम' और श्रद्धा इसी वेष में निवेदित करता है, जिससे मृत आत्माओं को शांति मिले। श्राद्ध विधि का पालन करते हुए प्रभु के इस वेष को श्रद्धा वेष कहते हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अनेकानेक वेषों में प्रभु जगन्नाथ सभी की आस्था और विश्वास के साक्षात् प्रमाण हैं। दशावतार क्षेत्र पुरी आज भी कल और आज की कहानी कहती है और महाप्रभु के अनेकानेक वेषों के अनेकानेक अवसरों पर दर्शन करती है।

महाप्रभु जगन्नाथ की अपने भक्तों पर कृपा

महाप्रभु जगन्नाथ आज भी शांति, सद्भाव, प्रेम, भक्ति, श्रद्धा, एकता एवं विश्व मैत्री के प्रतीक हैं। इन्हें नीलमाधव, पतितपावन, नीलाद्रिबिहारी, लोकेश्वर और लोकबंधु के रूप में जाना जाता है। ये विश्व सभ्यता के केंद्र बिंदु हैं। मानवता के स्वामी, संपूर्ण ब्रह्माण्ड के मालिक हैं महाप्रभु जगन्नाथ। ये ओड़िशा प्रांत के राज्य देवता हैं। ये अपने आप में वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन, सौर और गाणपत्य हैं। इनकी चर्चा वेदों ने की है, पुराणों ने की है, उपनिषदों ने की है। स्कन्दपुराण, ब्रह्मपुराण एवं मत्स्यपुराण में इनकी विस्तृत चर्चा है। भगवद् गीता के 15वें अध्याय में महाप्रभु जगन्नाथ को संसार के स्वामी के रूप में माना गया है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में श्रीराम विभीषण को महाप्रभु जगन्नाथ की पूजा करने की सलाह देते हैं।

अपने भक्तों पर महाप्रभु जगन्नाथ की कृपा–

दीनबंधु दास, दामोदर दास, विशम्भर दास, नीलांबर दास। पंच सखाओं में हैं– अच्युतानंद दास, अनंत दास, बलराम दास, यशोवंत दास एवं जगन्नाथ दास। साथ ही, रघु बेहरा, बंधु महांति, दासिया बाउरी और सालबेग पर भी इनकी असीम अनुकम्पा रही है। यही नहीं, आदि शंकराचार्य, भक्त कवि जयदेव, चैतन्य महाप्रभु, कबीर और तुलसीदास पर महाप्रभु की असीम कृपा रही।

महाप्रभु ने निम्न भक्तगणों पर असीम कृपा की है–

जयदेव पर महाप्रभु की कृपा

जयदेव से जुड़ी हुई अनेक कथाएँ हैं। इनमें एक है– जयदेव कहीं दूर रात में एक गीत रच रहे थे और गा भी रहे थे। वहीं पास में एक धोबिन कपड़े धो रही थी। वह उनके मधुर गीत सुनकर नाचने लगी। इस पावन छटा को देखने के लिए प्रभु जगन्नाथ मंदिर छोड़कर चले आए और धोबिन के साथ-साथ नाचने लगे। धोबिन की नृत्य-कला की गहराइयों में डूबे

जगन्नाथ जी के कीमती वस्त्र कांट-कूश में फँसकर तार-तार हो गए। सुबह श्रीमंदिर में देखा गया कि जगन्नाथ जी के वस्त्र फटे हैं। जब उसे बदलने की तैयारी हुई तो एक दिव्यवाणी सुनाई दी कि कल रात वाली धोबिन को लाओ। उसे कीमती वस्त्र आदि दो, फिर मेरे वस्त्र बदलो। धोबिन को बुलाया गया, कीमती वस्त्र आदि दिए गए और तभी से जयदेव भी अपनी रचना श्रीमंदिर में करने लगे और प्रभु जगन्नाथ को सुनाने लगे।

दूसरी कहानी और रोचक है। जयदेव अपनी अष्टपदी लिख रहे थे–

प्रिये चारु शीले मुंज मान मनिदानम्
स्मर गरल खंडनं पत्र शिरसि मंडनम्

इतना तक लिख चुके थे। आगे क्या लिखें, सोच नहीं पा रहे थे। उनकी कलम रूक गई। बेचैन से हो गए। पंक्ति अधूरी लिखी छोड़ कर कहीं चले गए। जयदेव के वेष में जगन्नाथ जी आए। पद्मावती से कहा– जल्दी भोजन लाओ, भूख लगी है। भोजन किया। शयन कक्ष में गए और जयदेव की अष्टपदी की तीसरी पंक्ति लिख दी–

'देहि मे पद पल्लव मुदारम्।'

अर्थात् सिर पर अपने चरण-पल्लव रखो।

जयदेव कुछ देर बाद आए। फिर से नहा-धोकर अपनी पत्नी पद्मावती से कहा– 'थाल लगाओ, भूख लगी है।' पद्मावती ने कहा– 'क्या पागल हो गए हो, अभी-अभी खाए थे, तुम्हें क्या इतनी जल्दी भूख लग गई?' जयदेव पागलों की तरह अपने शयन कक्ष में घुसे। देखा कि अष्टपदी की तीसरी पंक्ति लिखी हुई है और शयन-कक्ष सुगंध से महका था। पद्मावती के पास आए और कहने लगे कि तुम बड़ी भाग्यवती हो। प्रभु जगन्नाथ ने तुम्हारे हाथों का पकाया भोजन किया। पद्मावती ने तुरंत कहा– 'स्वामी! जगन्नाथ जी तो आपकी रचना में समा गए हैं। तुम्हारी रचना तो अब भवदीय रचना हो गई। अब कहिए कि मैं भाग्यवती हूँ या आप भाग्यवान?'

देवर्षि नारद पर महाप्रभु की कृपा

कहानी महाप्रभु के एक रूप श्रीकृष्ण की है। द्वापर युग में एक बार द्वारका में श्रीकृष्ण की पटरानियों ने माता रोहिणी से कृष्ण की ब्रजलीला

एवं गोपियों के प्रेम प्रसंग को सुनाने का आग्रह किया। पहले तो माता रोहिणी ने टालने का बहुत प्रयास किया, लेकिन पटरानियों के बहुत आग्रह करने पर उन्हें गोपियों के प्रेम प्रसंग को सुनाना ही पड़ा। सुभद्राजी की उपस्थिति वहाँ उचिन न जानकर माता रोहिणी ने उन्हें द्वार के बाहर खड़े रहने को कहा और यह भी आदेश दिया कि वे किसी को अन्दर न आने दें। उन्होंने गोपियों के प्रेम प्रसंग वाली कथा शुरू की। ठीक उसी समय श्रीकृष्ण और बड़े भाई बलराम आ पहुँचे। सुभद्राजी ने दोनों भाइयों के बीच में खड़ी होकर माता रोहिणी के आदेशानुसार उन्हें भीतर जाने से रोक दिया। उसी समय देवर्षि नारद नारायण-नारायण करते हुए वहाँ आ गए। देवर्षि ने जो यह प्रेम द्रवित रूप तीनों का देखा तो श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि आप तीनों इसी रूप में कलियुग में विराजें। श्रीकृष्ण ने महर्षि नारद की प्रार्थना स्वीकार की और कलियुग में दारू विग्रह रूप में इसी रूप में पुरी में प्रकट होने का वरदान दिया। कालान्तर में ये ही महाप्रभु जगन्नाथ जगन्नाथ पुरी में अपने बड़े भाई बलभद्र और बहन सुभद्रा के साथ प्रकट हुए।

इंद्रद्युम्न पर महाप्रभु की कृपा

इंद्रद्युम्न मालवा के राजा थे। वे स्वभाव से विष्णु-भक्त थे। एक बार स्वप्न में उन्हें ऐसा आभास हुआ कि भगवान विष्णु सबसे अच्छे रूप में उत्कल में मिलेंगे। सुबह होने की देर थी, विद्यापति नामक एक ब्राह्मण को उसका पता लगाने के लिए शीघ्र उत्कल भेज दिया।

विद्यापति उत्कल आये। काफी छानबीन के बाद उन्हें पता चला कि भगवान विष्णु यहाँ नीलमाधव के रूप में पूजे जाते हैं। उन्होंने यह भी पता लगाया कि नीलमाधव विश्वावसु शबर के यहाँ गृहदेवता के रूप में पूजे जाते हैं। वे विश्वावसु को ढूँढ़ते हुए उसके पास गए और नीलमाधव के विषय में जानना चाहा। लेकिन विश्वावसु ने नीलमाधव के विषय में कुछ भी बताने से मना कर दिया।

विद्यापति ने नीलमाधव के विषय में जानने के लिए बहुत हाथ-पाँव मारे लेकिन जब कोई रास्ता नजर नहीं आया तो अंत में विश्वावसु की सुंदर

कन्या ललिता से विवाह करने का उन्होंने प्रस्ताव रखा। विद्यापति का विवाह ललिता के साथ हो गया। दोनों पति-पत्नी अब एक साथ रहने लगे।

एक दिन विद्यापति ने अपनी पत्नी ललिता से कहा कि वह अपने पिता से कहे कि वे उन्हें नीलमाधव के विषय में बताएँ। अगर ललिता ऐसा नहीं करेगी तो वे उसे छोड़कर चले जाएंगे। लाचार ललिता ने अपने सुहाग की भीख माँगते हुए अपने पिता से आग्रह किया कि वे विद्यापति को नीलमाधव के विषय में बता दें। विश्वावसु ने एक शर्त पर नीलमाधव के विषय में बताने पर सहमति जताई कि जहाँ उनके दर्शन होंगे, वहाँ तक विद्यापति अपनी आँखें बंद रखेंगे और उनके दर्शन के तुरंत बाद उसकी आँखों पर पट्टी बांध दी जाएगी जिससे कि वे पुन: वह मार्ग न देख सकें।

रात हुई। ललिता ने विद्यापति को नीलमाव की जानकारी वाली शर्त बताई। फिर विचार किया कि सुबह जब विद्यापति की आँखों पर पट्टी बाँधी जाएगी तो पट्टी के दोनों छोरों पर वह सरसों बाँध देगी और वह गिरती जाएगी और जिससे कि कुछ दिनों बाद जब सरसों पौधे का रूप धारण करेगी तो पता चल जाएगा कि नीलमाधव तक पहुँचने का रास्ता किधर है।

अगले दिन सुबह हुई। विद्यापति की आँखों पर ललिता ने उसी प्रकार पट्टी बांध दी, जैसा कि उसने रात में विचार किया था। विश्वावसु विद्यापति को लेकर नीलमाधव के पास पहुँचा। विद्यापति की आँखों की पट्टी जैसे ही खुली उन्होंने नीलमाधव के दर्शन किए और देखा कि उस वट वृक्ष से एक कौआ नीचे गिरा, मर गया लेकिन शीघ्र ही स्वर्ग चला गया। उन्होंने भी वहाँ प्राण त्याग करना उचित समझा, तभी उन्हें एक दिव्यवाणी सुनाई दी- 'अरे मूर्ख ब्राह्मण! यह क्या कर रहे हो? तुम्हें तो नीलमाधव की जानकरी राजा इंद्रद्युम्न को देनी है?'

विद्यापति राजा इंद्रद्युम्न के पास लौट आए और नीलमाधव के विषय में उन्हें बताया। शीघ्र ही राजा इंद्रद्युम्न ओड़िशा यात्रा के लिए निकल पड़े। जैसे ही वे उस स्थान पर पहुँचे। नीलमाधव अंतर्ध्यान हो चुके थे। वे निराश हो गए लेकिन तुरंत एक दिव्यवाणी उन्हें सुनाई दी-

'निराश मत होओ इंद्रद्युम्न! जाओ, देखो, समुद्र में एक दारू लट्ठा तुम्हें तैरता मिलेगा। उसे लाकर तुम जगन्नाथ जी, सुभद्रा जी और बलभद्र जी की मूर्तियाँ गढ़ो।'

कहा जाता है कि इन्द्रद्युम्न ने ऐसा ही किया। आज भी श्रद्धालु भक्त समुदाय इसे इन्द्रद्युम्न पर जगन्नाथजी की कृपा ही मानता है।

दूसरी कहानी और भी रोचक है। इन्द्रद्युम्न की पत्नी का नाम गुण्डिचा था। उसी के नाम पर पुरी में इन्द्रद्युम्न ने एक महल बनवाया और उसका नाम रखा गुण्डिचाघर। समुद्र के किनारे तैरते हुए दारू को गुण्डीचा लाया गया। राजा दिन-रात परेशान रहने लगे कि कैसे मूर्तियाँ तैयार की जाएँ। सब को निमंत्रण दिया कि जो कोई भी मूर्तियाँ गढ़ सकता है, आए और उस पवित्र नीम काष्ठ से मूर्तियाँ गढ़े। एक-एक करके अनेक बढ़ई आए और उल्टे पाँव लौट गए क्योंकि जो कोई उस लकड़ी पर अपनी कुल्हाड़ी चलाता था वह कुल्हाड़ी अपने-आप टुकड़े-टुकड़े हो जाती थी, भोथर हो जाती थी एवं किसी काम का नहीं रह जाती थी। राजा की चिंता और बढ़ गई। दिन-रात, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते उसे एक ही चिंता घेरे रहती थी कि कैसे दारू ब्रह्म का निर्माण हो।

एक दिन विश्वचकर्मा एक वृद्ध बढ़ई के रूप में वहाँ आए और स्वेच्छा से दारू ब्रह्म के निर्माण की इच्छा व्यक्त की, लेकिन तीन शर्त रखीं:

1. मूर्तियों के आकार, प्रकार वे स्वयं सुनिश्चित करेंगे।
2. मूर्तियों के निर्माण हेतु एक अलग घर उन्हें दिया जाय, जिसको वे भीतर से बंद करके निर्माण कार्य करेंगे।
3. उन्हें इस काम के लिए कम से कम 21 दिनों का समय दिया जाए।

राजा ने तीनों शर्तें मान लीं। महादेवी बना दारू को रखकर और अंदर से कमरा बंद कर बढ़ई ने मूर्तियां बनाने का काम शुरू कर दिया। राजा इन्द्रद्युम्न की पत्नी गुण्डिचा जिज्ञासावश उस दरवाजे से कान लगाकर चुपके से अंदर की 'खुट-खुट' की आवाज सुनती थी। एक रात उसने सोचा कि बेचारा बढ़ई बिना अन्न-जल के कमरे के भीतर अपने को बंद

करके काम करता है क्या उसे भूख नहीं लगती?15वें दिन उसने राजा को अपने मन की शंका वाली बात बतायी। राजा ने सोचा रानी ठीक कहती है। दरवाजे से कान लगाकर सुना, तो कोई आवाज नहीं आ रही थी। रानी को बुलाया। रानी ने भी कोई आवाज नहीं सुनी। अब राजा-रानी दोनों का शक यकीन में बदल गया। अगले दिन जब दरवाजा खोला तो वहाँ बढ़ई नहीं था और तीनों ही विग्रह के मात्र शीर्ष भाग ही बने हुए थे। राजा ने सोचा कि जो बना है, ठीक ही बना है।

अब विग्रहों के लिए मंदिर का निर्माण होना चाहिए। राजा ने एक विशाल मंदिर बनवाया और यज्ञ की तैयारी शुरू कर दी। यज्ञ में ब्राह्मणों को दान देने के लिए प्रतिदिन उसने दस हजार गायों को एकत्रित किया। कहा जाता है कि इतनी अधिक गायें हो गईं कि उनके खुर से एक विशाल गड्ढा हो गया और अंदर से स्वच्छ और निर्मल जल अपने-आप फूट पड़ा जो उस समय पक्षियों एवं पशुओं के बिहार का डेरा बन गया था। आज भी वह जलाशय है, जिसे इन्द्रद्युम्न तालाब के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार विग्रह और मंदिर दोनों तैयार हो गए। उसी समय वहाँ नारद आ गए। राजा इन्द्रद्युम्न ने विग्रह निर्माण और मंदिर निर्माण की पूरी कहानी नारदजी को बताई। नारदजी ने राजा से आग्रह किया कि वे उनके साथ इंद्रलोक जाएँ और ब्रह्माजी से निवेदन करें कि वे मृत्युलोक चलकर विग्रह में प्राण प्रतिष्ठा करें। राजा इन्द्रद्युम्नने नारदजी की बात मानकर इंद्रलोक के लिए प्रस्थान किया। वहाँ जब दोनों पहुंचे तो ब्रह्माजी पूजा कर रहे थे। वहाँ इंद्रलोक में एक घंटा ब्रह्माजी का, वे लोग इंतजार करते रहे, लेकिन तब तक यहाँ मृत्युलोक में हजार वर्ष पूरे हो गए। राजा इन्द्रद्युम्न की कई पीढ़ी गुजर गई। उनके सगे-संबंधियों की कई पुश्ते जन्मी और मृत्यु को वरण कर ली। धरती की पूरी सभ्यताएं बदल गईं। राजा इन्द्रद्युम्न और उनके मंदिर को भूल गए।

तीसरी भी एक कहानी है। इन्द्रद्युम्न नारद के साथ ब्रह्माजी को लेकर जब आए तो देखते हैं कि सब कुछ बदल गया है। वहाँ पहले जैसा कुछ भी

नहीं था। न उनका मंदिर था, न ही गुण्डिचा, न ही उनके सगे-संबंधी, सभी मौत के गाल में पहुँच चुके थे। कारण यह था कि हजारों साल गुजर चुके थे। उस समय उत्कल का राजा माधव था। वह एक दिन अपने घोड़े पर सवार होकर जा रहा था। अचानक उसका घोड़ा ठोकर खाकर गिर पड़ा। पता लगाया तो आवाज के नीचे इन्द्रद्युम्न का बनवाया हुआ मंदिर मिला।

जब नारद और इन्द्रद्युम्न लौटे उस समय वहाँ मंदिर में माधव राजा अपने देवता की पूजा कर रहा था। इन्द्रद्युम्न ने कहा कि यह मंदिर मेरा है, आप कौन हैं? उत्कल के राजा माधव ने कहा–आप कौन हैं और क्या चाहते हैं? इन्द्रद्युम्न ने अपनी बात और सच्चाई को बताने की बहुत कोशिश की लेकिन माधव राजा के सामने उनकी एक न चली। अंत में, नारद ने सविस्तार माधव राजा को इन्द्रद्युम्न की जानकारी दी, फिर भी वह तब तक मानने के लिए तैयार नहीं हुआ जब तक कि कोई साक्षी न मिले। उसी समय इन्द्रद्युम्न तालाब से हाथी के आकार का एक कछुआ जल के ऊपर आकर मानव की भाषा में बोला–''मैं साक्षी हूँ, मैं। मैं कच्छप गवाही देता हूँ। यह मंदिर मालवा के राजा इन्द्रद्युम्न ने बनवाया था।''

यह सुनते ही माधव ने वह मंदिर इन्द्रद्युम्न को सौंप दिया। उस दिन के बाद से लोग उस राजा को 'गाल माधव' कहकर पुकारने लगे। चूँकि माधव उस समय का बहुत बड़ा भक्त था, नारद ने इन्द्रद्युम्न से कहा कि प्राण प्रतिष्ठा समारोह में उसे भी सादर आमंत्रित किया जाय। ब्रह्माजी ने स्वयं आकर प्राण प्रतिष्ठा की। तब से वहाँ महाप्रभु जगन्नाथ, बलभ्रद एवं सुभद्रा की पूजा शुरू की गई।

प्राण प्रतिष्ठा समारोह की समाप्ति के पश्चात् ब्रह्माजी ने इंद्रद्युम्न से कहा–''वत्स! मैं तुम से प्रसन्न हुआ। कोई वर मांगो।'' इन्द्रद्युम्न ने कहा–''भगवान! मैं चाहता हूँ कि यह मंदिर किसी व्यक्ति का न रहकर पूरी मानव जाति का मंदिर हो और उस मंदिर के प्रमुख देव संपूर्ण ब्रह्मांड के स्वामी, जगत् के नाथ श्री श्री जगन्नाथजी महाराज हों। मुझे आप यह भी वरदान दें कि मेरा कोई उत्तराधिकारी न हो जो भविष्य में यह कह

सके कि यह मंदिर मेरा है। ब्रह्माजी तथास्तु कहकर अपने लोक चले गए।

कहा जाता है कि विश्वावसु, ललिता और विद्यापति की निःस्वार्थ भक्ति व्यर्थ नहीं गई। विश्वावसु ने जगन्नाथजी की सेवा दइतापति के रूप में, ललिता ने प्रसाद पकाकर शबर के रूप में एक विद्यापति ने पति महापात्र के रूप में जगन्नाथजी की सेवा की और भक्त जीवन को सार्थक बनाया।

ओड़िशा प्रदेश पर कृपा

एक समय की बात है। ओड़िशा में प्राकृतिक प्रकोप से सूखे की स्थिति उत्पन्न हो गई। वर्षा का कहीं नामोनिशान ही नहीं था। समूचा प्रशासन परेशान। राज्य की जनता के लिए सरकार करे तो क्या करे? मुख्यमंत्री परेशान हो गए। सोचे–चलो चलते हैं हरिद्वार। कहीं कोई उपाय निकल आए। मुख्यमंत्री जब हरिद्वार पहुँचे, तब तक आवाज सुनाई पड़ी– कुछ दूर और आगे जाओ, तुम्हें वहाँ कोई व्यक्ति मिलेगा, वहीं तुम्हें कुछ उपाय बताएगा। मुख्यंत्री और आगे चल दिए। वहाँ एक ब्राह्मण बैठा था। ब्राह्मण के पास जाते ही ब्राह्मण ने कहा कि ओड़िशा से आए हो। तुम्हारे प्रान्त की जनता सूखे से प्रभावित है। जाओ, लौट जाओ, भुवनेश्वर। वहाँ तुम्हें एक पण्डित मिलेगा। वह अगर यज्ञ करेगा तो तुम्हारे राज्य में अवश्य वर्षा होगी।

मुख्यमंत्री ओड़िशा लौट आए। उनके पास एक पण्डित आया। उसने यज्ञ करने की सलाह दी। यज्ञ शुरू हुआ। यज्ञ की पूर्णाहुति के दिन कहा जाता है ओड़िशा में मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई। लोग बतलाते हैं कि वैसी वर्षा कभी नहीं हुई थी। चार दिनों तक वर्षा होती रही।

दासिया बाऊरी पर महाप्रभु की कृपा

ओड़िशा राज्य के बालूगाँव, चिल्का में एक जुलाहा रहता था। उसका नाम था, दासिया बाऊरी। वह जगन्नाथजी का अनन्य भक्त था। उसका अपना नारियल का बगीचा था। बगीचे में मीठे-मीठे अनेक किस्म के फल थे।

एक दिन कुछ मीठे नारियल लेकर वह पुरी चला आया। सोचा, भगवान जगन्नाथ के दर्शन भी होंगे और उन्हें नारियल का भोग भी वह लगा लेगा।

लेकिन जो भक्त सोचता है क्या भगवान वही करते हैं? श्रीमन्दिर के पण्डों ने उसे नीच जाति का बताकर मन्दिर में जाने से उसे रोक दिया। बेचारा बाऊरी करे तो क्या करे? मन्दिर के सिंहद्वार पर खड़े होकर प्रभु जगन्नाथ से विनती की–''हे प्रभु! दर्शन दो! मेरे नारियल भोग स्वरूप स्वीकार करें।'' प्रभु ने श्रीमन्दिर से हाथ बढ़ाकर बाऊरी के नारियल फल खाये। देखनेवाले देखते रह गए। उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

दासिया बाऊरी से जुड़ी एक और सुन्दर कथा है। दासिया बाऊरी ने एक दिन अपने गाँव से होकर जाते हुए एक ब्राह्मण को देखा। पूछने पर पता चला कि वह प्रभु जगन्नाथ के दर्शन के लिए श्रीक्षेत्र जा रहा है। दासिया बाऊरी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने बड़े ही विनम्र शब्दों में ब्राह्मण से निवेदन किया कि जब वे प्रभु के दर्शन आदि कर लें, तो उसके लिए भी उस नारियल को प्रभु को चढ़ा दें और उनसे यह भी कहें कि प्रभु आपके भक्त दासिया बाऊरी ने आपके लिए इसे भेजा है।

ब्राह्मण पुरी पहुँचा। मन्दिर में जगन्नाथजी के दर्शन किए। पण्डों की सहायता से भोग आदि लगाया। जब चलने लगा तो याद आया कि दासिया बाऊरी ने भगवान के लिए नारियल दिया है। ब्राह्मण वहीं खड़ा हो गया और प्रभु से प्रार्थना की–''हे प्रभु! क्षमा करो। दासिया बाऊरी ने आपके लिए नारियल भेजा है। कृपया आप इसे ग्रहण करें।'' जगन्नाथ ने अपनी चमचमाती आंखें खोल हाथ बढ़ाकर मुस्कराते हुए दासिया के नारियल को स्वीकार कर लिया।

चण्डालिका पर महाप्रभु की कृपा

कथा पुरानी है। मेदिनापुर, पश्चिम बंगाल में एक वृद्ध महिला रहती थी। वह जन्मांध थी। नाम था उसका चण्डालिका। लेकिन नाम के विपरीत काम। वह जगन्नाथजी की अनन्य भक्तिन थी। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह पुरी की रथयात्रा का आनंद ले। प्रभु जगन्नाथ को रथ पर बैठे देखे।

चण्डालिका रथयात्रा के पावन दृश्य को देखने के लिए मेदिनापुर से पुरी के लिए चल पड़ी। चलते-चलते आखिर रथयात्रा के दिन पुरी के

निकट पहुँच ही गई। उधर तीनों विग्रह अलग-अलग पहण्डी के साथ अपने-अपने रथ पर विराजमान हो चुके थे। पूजा आदि की औपचारिकाएँ पूरी हो चुकी थी। राजा छेरा पोंहरा का दायित्व भी निभा चुके थे। रथ के चक्के की धुरी के साथ मोटे-मोटे रस्से बांधे जा चुके थे। 'जय-जगन्नाथ' की शंखध्वनि हो चुकी थी, लेकिन आश्चर्य की बात कि रथ के चक्के लाख कोशिशों के बावजूद भी टस से मस नहीं हो रहे थे। राजा ने आदेश दिया कि खींचने के लिए हाथी और घोड़े लगाए जाएँ, फिर भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। राजा ने मुख्य पुजारी से पूछा। मुख्य पुजारी ने प्रभु जगन्नाथ के नाम का स्मरण किया, तब उसे एक दिव्य वाणी सुनाई दी कि प्रभु की एक भक्तिन पुरी के पास पहुंच चुकी है। उसे आदर के साथ जब तक लाया नहीं जाएगा और वह अपने हाथों से रथ के चक्कों का जब तक संस्पर्श नहीं करेगी, तब तक रथ नहीं चलेगा।

चण्डालिका चलते-चलते थक चुकी थी। उसे विशेष सवारी से श्रद्धापूर्वक लाया गया। फूल-माला आदि निवेदित किया गया और फिर रथ के चक्कों का जैसे ही उससे संस्पर्श कराया गया, देखते ही देखते रथ चल पड़ा। श्रद्धालु भक्त समुदाय ने एक साथ जय-जयकार किया–''जय जगन्नाथ। जय-जय चण्डालिका!!''

सदना कसाई पर महाप्रभु की कृपा

बहुत दिन पहले की बात है। सदना नाम का एक कसाई था। था तो वह कसाई, लेकिन धार्मिक विचारों वाला था। जहाँ भी भजन-कीर्तन आदि होता था, सदना अवश्य जाता था। उसकी सांस-सांस में प्रभु जगन्नाथ का नाम था।

सदना के पास बाट (नाप-तौल के लिए) के रूप में एक पत्थर था जिससे वह अपने ग्राहकों को मांस तौल कर देता था, लेकिन सदना को यह पता नहीं था कि जिसे वह बाट के रूप में प्रयुक्त करता है, वह सचमुच एक शालिग्राम है।

एक बार उसकी दुकान से होकर एक महात्मा गुजरे। उसने देखा कि

मांस–विक्रेता के तराजू पर शालिग्राम है। उसने सदना से शालिग्राम की माँग की और उसके लिए वह मुँह माँगा रुपया भी देने के लिए तैयार हो गया। सदना ने भी सोचा कि जब एक महात्मा पत्थर के टुकड़े को मांगता है तो एक पथर के टुकड़े में क्या रखा है, उसे वह दे दे और दूसरा फिर तैयार कर ले। सदना ने खुशी–खुशी शालिग्राम महात्मा को सौंप दिया।

लेकिन प्रभु को सदना से अलग होना अच्छा नहीं लगा। उस रात महात्मा को स्वप्न आया कि मुझे सदना के पास छोड़ दो। मुझे उसके बिना अच्छा नहीं लगता। सुबह उठकर महात्मा ने शालिग्राम सदना को वापस दे दिया। वापस शालिग्राम लेते समय सदना ने महात्मा से सब कुछ जान लिया। वह अपने कसाई के धंधे को छोड़–छाड़कर पुरी चला आया।

जगन्नाथ पुरी दूर थी इसलिए सदना रास्ते में एक गृहस्थ के यहाँ ठहर गया। लेकिन इच्छा तो थी कि कब पुरी पहुँचे और प्रभु जगन्नाथ के दर्शन करे। उस गृहस्थ परिवार में पति–पत्नी दो ही प्राणी थे। जैसे ही रात हुई वह गृहिणी सदना के सुंदर रूप और शरीर को देखकर उसके पास आई और उससे अपनी काम वासना शांत करने के लिए कहा। सदना ने विनीत भाव से कहा कि माताजी मैं आपका पुत्र हूँ। यह काम मैं कभी नहीं कर सकता। गृहिणी वापस चली गई और बाहर आकर उसने अपने पति की हत्या कर दी। फिर सदना के पास गई और फिर वही आग्रह किया कि देखो हम दोनों के अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं है। लेकिन उस गृहिणी का कोई असर सदना पर नहीं पड़ा। उसने फिर साफ इन्कार कर दिया।

गृहिणी ने नया नाटक शुरू किया। रात के अंधेरे में वह जोर–जोर से चिल्लाने लगी–"अरे गाँववालों! आओ, देखो! यात्री ने मेरे पति की हत्या कर दी है, अब यह मेरे साथ बलात्कार करना चाहता है। मेरी रक्षा करो गाँव वालों!"

गाँव के लोग इकट्ठे हो गए लेकिन सदना के चेहरे पर भय नाम की कोई चीज ही नहीं थी। वह तो प्रभु जगन्नाथ में ही रमा रहा।

उसे पकड़ कर न्यायाधीश के सामने लाया गया। न्यायधीश ने निर्णय

सुनाया कि इस यात्री के दोनों हाथ काटकर इसे गाँव से बाहर कर दिया जाय।

सदना के दोनों हाथ काट दिए गए। फिर भी सदना ने खुशी–खुशी पुरी के लिए प्रस्थान किया। जगन्नाथजी के आग्रह करने का ढंग देखिए। उन्होंने मुख्य पुजारी को स्वप्न में आकर कहा कि सदना कसाई नाम का मेरा एक भक्त पुरी आ रहा है। उसके दोनों हाथ कटे हुए हैं, उसे आदरपूर्वक मेरे पास लाया जाए।

एक पालकी सजाई गई। बाजे–गाजे के साथ सदना को श्रीमंदिर में फूल–माला के साथ लाया गया। यह देख सदना के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह मंदिर में प्रवेश करते ही आत्म विभोर हो गया और कटे हाथ उठाकर "हरि–हरि बोल, बोल हरि बोल" करने लगा। उसने जैसे ही हाथ ऊपर किए उसके दोनों हाथ ठीक हो गए। कीर्तन करते–करते सदना वहीं सो गया। स्वप्न आया–"पहले जन्म में तुम काशी में एक ब्राह्मण थे। एक कसाई गाय के पीछे भाग रहा था। तुमने गाय के गले में दोनों भुजाएँ डालकर उसे रोका। वह कसाई उस स्त्री का पति था। गाय ही स्त्री रूप में में जन्मी और पूर्व जन्म का बदला लेने के लिए उसका गला काट दिया। तुमने भुजाओं से गाय को रोका था, इस अपराध में तुम्हारे हाथ कटे।" प्रभु ने स्वप्न में उसे दर्शन दिए। सदना की शंका का समाधान हुआ।

भक्तकवि सालबेग पर महाप्रभु की कृपा

सालबेग नाम का एक भक्त था। वह था तो मुसलमान लेकिन उसके जीवन में ऐसी घटना घटी कि वह हमेशा के लिए भगवान जगन्नाथ का भक्त बन गया।

सालबेग के पिता का नाम लालबेग था। लालबेग को एक बार मुगल बादशाह ने जगन्नाथजी का पता लगाने के लिए पुरी भेजा। लालबेग अपनी सेना लेकर पुरी की तरफ चल दिया। रास्ते में एक छोटा–सा गाँव था। उस गाँव पर पहले उसने आक्रमण किया। गाँव के लोगों को उसकी सेना ने तबाह कर दिया। लालबेग की नजर उस गाँव की सुन्दर ब्राह्मणी विधवा युवती पर पड़ी। उसे उठा लिया और बाद में उससे शादी कर ली।

कुछ दिनों बाद उस ब्राह्मणी विधवा से सालबेग नामक एक पुत्र पैदा हुआ। पुत्र बड़ा होकर एक सैनिक बना।

एक दिन सालबेग युद्ध करते हुए घायल हो गया। तलवार की चोट इतनी गहरी थी कि घाव भरने का नाम ही नहीं ले रहा था। अनेक वैद्यों से इलाज कराया, लेकिन जख्म और बढ़ता ही गया।

एक दिन सालबेग की माँ ने कहा कि बेटा तुम प्रभु जगन्नाथ के नाम का स्मरण करो और पुरी जाकर महाप्रसाद का सेवन करो। माँ की आज्ञा मानकर सालबेग पुरी आया और महाप्रभु के भजन में लीन हो गया। प्रभु उसकी भक्ति से प्रसन्न हुए और देखते ही देखते उसका घाव भर गया।

कहा जाता है कि उस दिन से ही सालबेग प्रभु जगन्नाथ के भजन लिखने और गाने लगा। यह भी कहा जाता है कि एक बार रथयात्रा के दिन सालबेग के लिए प्रभु जगन्नाथ का रथ रुक गया था और तब तक रथ टस से मस न हुआ, जब तक सालबेग वहाँ न आया।

रामभक्त तुलसी पर महाप्रभु की कृपा

एक बार राम के अनन्य भक्त तुलसी को पता चला कि पुरी के श्रीमंदिर में भगवान राम के दर्शन होंगे। चूँकि वे राम भक्त थे, काशी से पुरी के लिए चल दिए। जब पुरी पहुंचे तो सोचा कि देखें कि किस प्रकार जगन्नाथजी के मंदिर में मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं।

तुलसीदास मंदिर में पधारे। सामने रत्नवेदी पर जगन्नाथजी सुभद्राजी और बलभद्रजी के विग्रहों को देखकर निराश हो गये। बिना पूजा किए ही वापस लौट आए। कारण यह था कि वे तभी अपना मस्तक भगवान के सामने झुकाते थे जब देखते थे कि सामने उनके राम धनुष और बाण लिए हुए हों।

शाम हो चुकी थी। धीरे-धीरे रात का अंधकार भी फैल गया। तुलसी चलते-चलते पुरी से 8 किलोमीटर दूरी मालती पाटपुरी पहुँचे। सोचे कि रात हो गई है इसलिए यहीं रुक जाते हैं। सुबह उठकर काशी के लिए प्रस्थान करेंगे। एक गृहस्थ परिवार से रात भर ठहरने का आग्रह कर रात में उसी के यहाँ ठहर गए। भूख तो जोरों की लगी थी, लेकिन लाचार थे।

ऊपर से राम के दर्शन न होने के कारण निराश भी थे।

जब सोने के लिए चले तो एक वृद्धा ने महाप्रसाद से भरी थाली उनके सामने रख दी और कहा कि यह महाप्रसाद प्रभु जगन्नाथ ने आपके लिए भेजा है। आप ग्रहण करें। तुलसी ने महाप्रसाद ग्रहण किया और फिर चल पड़े श्रीमंदिर की ओर। मंदिर का फाटक बंद होने वाला था। सामने रत्नवेदी थी। निराशा के वातावरण में फिर आंखें बंद कर देखा। अब देखते हैं कि उनके सामने जगन्नाथजी के रूप में धनुष-बाण लिए राम, सुभद्राजी के रूप में जनक नंदिनी सीता और बलभद्र के रूप में लखन लाल विराजमान हैं। तुलसी जी ने अपना मस्तक उन विग्रहों के सामने झुका दिया और अब उनके मुँह में 'जय श्री राम' नहीं, बल्कि 'जय जगन्नाथ' था।

पुरी नरेश पुरुषोत्तम देव पर महाप्रभु की कृपा

रथयात्रा के समय पुरी नरेश को रथों पर झाड़ू लगाते देखकर दक्षिण भारत के कांची के नरेश ने उन्हें चाण्डाल कहा, क्योंकि झाड़ू लगाने का काम चाण्डाल ही करता है।

जैसे ही यह खबर पुरी नरेश को मिली, वे आग-बबूला हो गए। उन्होंने कांची राजा से बदला लेने के लिए कांची पर आक्रमण कर दिया। जबकि एक बार रथयात्रा का पावन दृश्य देखने के लिए कांची का राजा अपनी सुन्दर राजकुमारी के साथ पुरी आया था और उसी समय पुरी नरेश ने उस सुन्दर राजकुमारी से विवाह करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। लेकिन होता वही है जो प्रभु जगन्नाथ चाहते हैं।

पुरी नरेश ने कांची पर आक्रमण तो किया लेकिन कांची विजय नहीं मिल सकी। पुरी नरेश ने अनेक बार अपनी सैन्य शक्ति मजबूत कर कांची पर आक्रमण किया, लेकिन हर बार निराशा ही हाथ लगी।

अंत में, लाचार पुरी नरेश पुरुषोत्तम देव ने प्रभु जगन्नाथ से प्रार्थना की। प्रभु, पुरुषोतम देव पर प्रसन्न हुए और अपने बड़े भाई बलभद्र जी के साथ अस्त्र-शस्त्रों सहित सैनिक के रूप में कांची विजय के लिए चल दिए।

दोनों भाई जगन्नाथ जी और बलभद्र जी दो अलग-अलग सफेद व काले घोड़े पर सवार होकर युद्ध जीतने के लिए चल दिए। वे जैसे ही चिल्का झील के पास पहुँचे, उन्हें जोर की प्यास लगी। उन दोनों ने इधर-उधर नजरें दौड़ाईं लेकिन कुछ भी नजर नहीं आया। कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि थोड़ी दूर पर एक वृद्ध महिला दही बेच रही है। उन्होंने उस महिला से दही खरीदा और अपनी प्यास बुझाई। जब दोनों चलने लगे तो पैसों के बदले अपनी अंगूठी निकाल उस ग्वालिन को दे दी और यह कहा कि जब पुरी नरेश अपने सैनिकों के साथ इधर से आएँ तो उन्हें वह यह अंगूठी दिखा दें।

कुछ देर बाद पुरी नरेश पुरुषोत्तम देव अपनी सेना के साथ उस दही बेचनेवाली वृद्ध महिला के पास आए। उस औरत ने अंगूठी दिखाते हुए सारी कहानी बताई। पुरुषोत्तम देव को यह पहचानते देर नहीं लगी कि वह अंगूठी और किसी की नहीं बल्कि महाप्रभु जगन्नाथ की थी क्योंकि उन्होंने अनेक बार श्रीमन्दिर की रत्नवेदी पर उसे देखा था। उन्होंने समझ लिया कि इस बार उनकी विजय सुनिश्चित है। और अन्त में उन्हें महाप्रभु की कृपा से विजय भी मिली।

राजा उस ग्वालिन के नाम को अमर बनाना चाहते थे। उस ग्वालिन का नाम था मणिका। राजा ने चिल्का झील के पास कांची विजय के उपरांत एक गाँव बसाया और उसका नाम रखा माणिकपाटणा।

रघु केवट पर महाप्रभु की कृपा

पुरी से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर पुरी-भुवनेश्वर मार्ग पर पिपली नामक एक गाँव है। वहाँ रघु केवट नाम का एक केवट रहता था। धंधा था उसका मछली पकड़ना। वह बहुत बड़ा धर्मात्मा था।

एक दिन रघु ने सोचा कि जीव हत्या करना पाप है। फिर क्या था? मछली पकड़ना बंद कर दिया। इधर उसके घर की आर्थिक स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई। वृद्धा माँ मरणासन्न हो गई, पत्नी और बच्चे भूख से मरने लगे।

फिर एक दिन उसे गीता का उपदेश याद आया-''कर्म ही धर्म है।''

दूसरे दिन अपना जाल ठीक-ठाक किया और चल पड़ा फिर मछली पकड़ने। जाल जल में डाल दिया। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि जाल में कोई भारी और बड़ी मछली फँस गई है। उसने जाल बाहर निकाला। देखा कि एक बड़ी भारी रोहू मछली है। वह बहुत खुश हुआ। सोचा इस मछली को बेचकर वह अपनी मां का इलाज कराएगा। लेकिन यह क्या? जैसे ही उस मछली को मारना चाहा, मछली आदमी के स्वर में 'जगन्नाथ! जगन्नाथ!!' की रट लगाने लगी। रघु ने सोचा कि यह प्रभु जगन्नाथ की कैसी लीला है।

रघु मछली को पास वाले एक जंगल के तालाब में छोड़ दिया और अपने को प्रभु जगन्नाथ की भक्ति में लीन कर लिया। रघु सूखकर कांटा हो गया।

एक दिन एक ब्राह्मण के वेष में प्रभु जगन्नाथ उसके पास आये। उन्होंने रघु से पूछा-''भक्त यह क्या कर रहे हो? क्या ऐसा करने से प्रभु जगन्नाथ मिलेंगे?'' रघु ने कोई उत्तर नहीं दिया। जैसे ही उसने अपनी आँखें खोली, देखा कि प्रभु जगन्नाथ साक्षात् वहाँ खड़े हैं। रघु ने उन्हें प्रणाम किया। जगन्नाथजी ने कहा-''वत्स, मैं तुम से अति प्रसन्न हूँ। मांगो, क्या वर मांगते हो?'' रघु केवट चरणों में गिर पड़ा और कहा-''हे पतितपावन! अगर आप हम पर प्रसन्न हैं तो हमें आजीवन अपनी भक्ति का ही मुझे वरदान दें।'' 'तथास्तु' कहकर प्रभु अंतर्ध्यान हो गए।

बंधु महांति पर महाप्रभु की कृपा

जाजपुर, कटक में बंधु महांति नाम का एक गरीब भक्त था। एक बार वह अपने बाल-बच्चों के साथ पुरी आया। तब तक उसके गाँव में भूखमरी फैल चुकी थी। उसने सोचा कि वह पुरी में ही अब बस जाएगा। लेकिन प्रभु जगन्नाथ की कैसी लीला है! उस बेचारे को भीख तक न मिली। वह अपने बाल-बच्चों सहित भूखों मरने लगा। एक दिन प्रभु जगन्नाथ स्वयं उसके सामने प्रगट हुए और अपने हाथों से थाल परोस कर बंधु को दिया। थाल सोने का था। इस प्रकार प्रभु जगन्नाथ ने बंधु महांति को और उसके परिवार को भूखमरी से बचा लिया।

मीरा बाई पर महाप्रभु की कृपा

मीरा बाई नाम की एक भद्र महिला थी। वह भगवान कृष्ण की दीवानी थी। उसके पति का नाम राणा भोज था। राणा भोज उसे बहुत तंग करता था। वह उस पर शक करता था। जब मीराबाई भक्ति में लीन थी, उसी समय उसके पति ने एक विशाल काले साँप को टोकरी में रखकर भेजा कि जैसे ही वह टोकरी खोलेगी, सांप उसे डंस लेगा। लेकिन जैसे ही पूजा से मीरा बाई उठी, देखी कि एक टोकरी रखी हुई है। उसने कृष्ण का स्मरण करके टोकरी खोली। देख कि भगवान कृष्ण की एक सुंदर मूर्ति है और रंग-बिरंगे खुशबूदार फल हैं उस टोकरी में। उसने कृष्ण की मूर्ति बाहर निकाली और रंग-बिरंगे फूलों से उनकी पूजा की।

भक्त गंगाधर दास पर महाप्रभु की कृपा

कहानी राजा प्रतापरुद्र के समय की है। गंगाधर दास नाम का एक भत पुरी के निकट गोबिंदपुर गाँव में रहता था। पति-पत्नी दोनों प्रभु जगन्नाथ के अनन्य भक्त थे। दोनों का जीवन पूजा-पाठ, कीर्तन-भजन में आराम से कट रहा था।

एक दिन गंगाधर की पत्नी श्रिया से गाँव की एक महिला ने कहा कि तुम तो जगन्नाथ की भक्त हो और बुढ़ापा तुम्हारा दरवाजा खट-खटाने लगा है और तुम्हें इस बुढ़ापे में भी कोई संतान नहीं है। श्रिया ने सोचा कि महिला ठीक ही कहती है। उसने गंगाधर से यह बात बताई। गंगाधर ने कहा कि संतान होने से मोह-माया में फँसना पड़ेगा, इसलिए संतान न होना ही अच्छा है। प्रभु जगन्नाथ का भजन करो जीवन कट जाएगा। लेकिन श्रिया भला क्यों मानती?

दूसरे दिन गंगाधर जब बाजार से घर लौटा तो उसकी गोद में भगवान जगन्नाथ का एक सुंदर विग्रह था। श्रिया को सौंपते हुए उसने कहा कि लो, अपने पुत्र को संभालो।

उस दिन के बाद से पति-पत्नी उस बच्चे से खेलने लगे। उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाते, रिझाते घर खुशियों से भरा रहता।

एक दिन गंगाधर दास अपने काम के सिलसिले में बाहर दूसरे गाँव गया। प्रभु का वियोग सहन न हुआ। शीघ्र ही फल, मिठाई और रेशमी वस्त्र आदि लेकर वापस चला आया। मुख पर जगन्नाथ नाम था और पैरों में तेजी। संयोग से वह जल्दी-जल्दी आते हुए गिर पड़ा और प्रभु नाम जपते-जपते ही मर गया।

गाँववालों ने इसकी सूचना श्रिया को दी। वह पुत्र के पास जाकर रोने लगी और कहने लगी—'हे पुत्र! मेरे सुहाग की रक्षा करना।' उस पुत्र ने कहा- 'माँ, रोती क्यों हो? जाओ! पिताजी सो रहे हैं। उन्हें उठाकर मेरे पास लाओ।'

आवाज सुनकर श्रिया के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जब वह बाहर गई, जहाँ लोगों की अपार भीड़ थी, उसके पति जैसे लेटे हुए थे। उसने उन्हें उठाया और ''हरि बोल'' कहते हुए गंगाधार दास उठे और बच्चों की तरह दौड़ते हुए अपने घर में घुसे, लेकिन सिंहासन पर वह पुत्र नहीं था।

कहा जाता है कि दोनों पति-पत्नी उस दिन के बाद पुरी चले आए और प्रभु जगन्नाथ की सेवा में लीन हो गए।

एक व्यापारी पर कृपा

व्यापारी नाम सुनकर शायद आप श्रद्धालु भक्तागण के भी मन में यह प्रश्न उठता होगा कि भगवान महाप्रभु के नाम का स्मरण व्यापारी न करेंगे तो और कौन करेगा? लेकिन व्यापारी वर्ग में बिना स्वार्थ के महाप्रभु की भक्ति करनेवाला व्यापारी आज भी एक है। वह भुवनेश्वर में रहता है। उसके जीवन में शायद ही कोई एक ऐसा मौका आया हो जिसमें वह रथयात्रा के लिए पुरी जाना भूल गया हो। बातचीत करने पर पता चला कि प्रभु उसको अपने आप रथयात्रा के दिन अपने पास बुला लेते हैं।

एक समय की बात है। उस व्यापारी के पास समय का अभाव था, इसीलिए रथ-यात्रा के एक दिन पहले उसने पुरी जाने का इरादा छोड़ दिया। दूसरे दिन दस बज गये। बड़ी मुश्किल से दूसरे के साथ स्कूटर से पुरी के लिए वह रवाना हुआ। रास्ते में उसके दोस्त का स्कूटर भी खराब हो गया। वह अब करे तो क्या करे? स्कूटर बनाने में एक घंटा लग गया।

अब वह पुरी पहुँचा तो देखता है कि जगन्नाथ जी सिंहद्वार की सीढ़ियों पर खड़े हैं। उठने का नाम ही नहीं ले रहे हैं। वह वहाँ गया और जैसे ही उनको कंधा दिया, महाप्रभु दौड़ पड़े।

1996 की बात है। महाप्रभु का नव कलेवर था। महाप्रभु के नये विग्रह को देखने के लिए लाखों भक्तों की भीड़ पूरी के बड़दाण्ड पर उमड़ आई थी। रथों पर छेरा-पहँरा के लिए पुरी के महाराज पधार चुके थे। छेरा-पहँरा के समय वह व्यापारी भक्त भी राजा के पीछे-पीछे तीनों रथों पर गया। जब लौटने लगा तो एक पुलिस अधिकारी ने उससे पूछा कि आप रथ पर कैसे आ गए? भक्त ने जवाब दिया कि वह अपने-आप थोड़े ही आया है, उसे तो महाप्रभु ने लाया है। पुलिस ने फिर पूछा कि रथों पर जाते समय तो उसे वह कहीं दिखाई नहीं दिए, अभी वह कैसे आ गया। भक्त व्यापारी ने मुस्कराते हुए जवाब दिया कि यह सब उनकी कृपा है। व्यापारी ने पुलिस से कहा कि हो सकता है कि उसे अपने साथ रखते समय महाप्रभु उस पुलिस की आँखें बंद कर दिए हों। पुलिस ने आँसूपर्ण नेत्रों से व्यापारी को गले लगा लिया।

एक भक्त प्रोफेसर पर कृपा

महाप्रभु का एक भक्त है। भक्त पेशे से कभी शिक्षा का कार्य करता था। सेवा निवृत्त होने के बाद भी महाप्रभु की भक्ति में उसने कोई कसर नहीं उठा रखी। सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय उसकी आँखों के सामने महाप्रभु की तस्वीर ही घूमती रहती है।

एक दिन संयोगवश उसके घर के लोग बाहर चले गए। वह अकेला सो गया। सपने में उसे लगा कि चार-चार हाथी उसका फाटक तोड़कर अंदर चले आए हैं। वह अपना बचाव करे तो कैसे करे, सपने में वह छटपटाने लगा। तभी नींद खुल गई। देखता है कि सचमुच चार हाथी घर के अंदर चले आए हैं। एक हाथी तेजी से बढ़ते हुए उसके कमरे में आ गया। हाथी ने अपना एक पाँव उसके ऊपर की ओर उठाकर उसके पेट पर रखना चाहा। वह चिल्लाने लगा। अंत में महाप्रभु के नाम का स्मरण कर वह बेहोश हो गया। इसके बाद जब आँख खुली तो देखता है कि महाप्रभु जगन्नाथ स्वयं

आकर हाथियों को उसके घर से निकाल रहे हैं और अपने गोद में लेकर उससे कहते हैं कि भक्त चिंता मत करो। मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ।

एक भक्त सेवक पण्डा पर कृपा

महाप्रभु का एक अनन्य भक्त था। वह श्रीमन्दिर में ही सेवायत(सेवक) का काम करता था। महाप्रभु की भक्ति में वह मन, वचन और कर्म से हमेशा लीन रहता था। बड़े की आराम के साथ उसका गार्हस्थ जीवन चल रहा था।

एक दिन पण्डे की पत्नी ने उससे कहा कि अब तो उसकी बेटी सयानी हो चुकी है। उसकी शादी-विवाह के चिन्ता करो। पण्डे को लगा कि पत्नी ठीक ही कह रही है। उसने कहा कि मेरी बेटी की शादी भी वही कालिया करेगा। पत्नी बहस करना उचित न जानकर चुप रह गई।

बेटी की शादी तय हो गई। दो महीने के बाद की शुभ तिथि निश्चित हुई। अब पत्नी घर में प्रतिदिन उस पण्डे से बेटी की शादी के विषय में कहती थी कि घर में एक पैसा नहीं है, कहीं से कुछ रुपयों का इन्तजाम तो करो। हर दिन पण्डा यह कह कर टालता गया कि कालिया शादी के लिए पैसों का इन्तजाम भी कर देगा। पत्नी बेचारी चुपचाप उसकी बातों को सुनती रही।

अब विवाह की तिथि से केवल दो दिन बच गए। पत्नी के समझाने पर वह एक व्यक्ति से कुछ रुपये उधार लेने के लिए तैयार हो गया। रात में उस व्यक्ति के घर गया। जब वह उस व्यक्ति के पास गया तो देखता है कि उस व्यक्ति के घर पर एक बड़ा ताला लटक रहा है। वह निराश होकर महाप्रभु का स्मरण करते हुए वापस चल दिया। रास्ते में बस स्टैण्ड पड़ता था। सोचा, चलो बस स्टैण्ड से होते हुए जल्दी घर चलें। वहाँ। उसको उसका एक पुराना यजमान मिल गया। वह बनारस से आया था। पण्डा को आते देखकर वह यजमान बहुत खुश हुआ। उसने कहा कि चलो मुझे महाप्रसाद दो। मुझे आज ही लौट जाना है। पण्डा ने देखा कि बारह बज रहे हैं। सोचा कि आधी रात के समय महाप्रसाद कहाँ मिलेगा। लेकिन यजमान की बात मानकर उसकी बस में बैठकर वह श्रीमंदिर की ओर चल दिया।

सिंहद्वार के पास आने पर देखा कि मंदिर का फाटक बंद हो चुका है। वह अब करे तो क्या करे। कुछ देर के बाद वह एक मठ में गया और वहाँ से थोड़ा बहत बचा हुआ महाप्रसाद दिलाकर वापस चल दिया। उसी समय यजमान ने साड़ी का एक छोटा-सा पैकेट उसे दिया और कहा कि उसकी ओर से एक छोटी-सी भेंट है। पण्डा निराश हो वापस घर लौटा। रास्ते भर सोचता रहा कि कल मेरी बेटी की शादी है, आज तक मेरे पास एक पैसा नहीं है, मैं अपनी बेटी की शादी कैसे करूँगा?

पण्डा घर लौटा। साड़ीवाला पैकेट अपनी पत्नी के सामने फेंकते हुए कहा कि रुपयों का इन्तजाम नहीं हो सका भाग्यवती। लो यह साड़ी, मेरे यजमान ने दिया है। पत्नी ने जब पैकेट खोला तो देखा कि साड़ी के बीच चार हजार रुपये के बण्डल हैं। दूसरे दिन महाप्रभु की याद करके उन्हीं रुपयों से अपनी बेटी की शादी दोनों ने बड़ी धूम-धाम से की।

पूर्णमासी जानी पर महाप्रभु की कृपा

फुलबानी जिले की पूर्णमासी जानी आज भी जीवित हैं। उसकी उम्र लगभग 65 साल की है। प्रभु जगन्नाथ के आदि और अनन्त रूप का वर्णन वह अपनी आँखें बन्दकर धारा प्रवाह करती रही है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, महाभारत और रामायणादि में वर्णित प्रभु जगन्नाथ के प्रसंगों का जब वह वर्णन करती हैं तो ऐसा लगता है कि स्वयं प्रभु जगन्नाथ उनकी जिह्वा पर बैठकर बोल रहे हों।

पुरी मन्दिर परिचालन समिति के प्रशासक से 1996 में बातचीत करने पर पता चला कि पूर्णमासी जानी को हाल ही में पुरी में सादर आमंत्रित किया गया था। उसके अनेक जगन्नाथ भजनों को रिकार्ड किया गया है। यह भी पता चला कि उसके हजारों भक्तिगीत अलग-अलग माध्यमों से रिकार्ड किए जा चुके हैं।

कौन कहेगा कि पूर्णमासी जानी विधवा है? वह तो प्रभु की दीवानी है। वह अपनी दो पुत्रियों के साथ आज भी खुश हैं। "मेरे तो प्रभु जगन्नाथ, दूसरों न कोई" वाली बात उनके साथ आज भी लागू है।

अपनी आँखों की पलकों के चिलमन को जब वह गिराती है तो वाल्मीकि और नवमुनि की स्वयं की काव्य-पंक्तियाँ सहसा उनकी जुबान से फूट पड़ती हैं, जिनका सम्बन्ध पतितपावन, लोकेश्वर, लोकबन्धु और सचमुच बड़े ठाकुर जगन्नाथ से है।

बारह-बारह वर्षों के अन्तराल पर अलग-अलग रूपों, स्थलों पर महाप्रभु की कृपा

सन् 1826 के आसपास की एक रोचक घटना है। आज की पुरी का बड़ दाण्ड (बड़ी चौड़ी सड़क) उस समय रेत का ढेर था। उसी रेत में एक स्वामी दिन-रात धूल-धूसरित रूप में लेटे रहता था। दूर-दूर से लोग आते थे और उसके चरण-स्पर्श कर उनसे कुछ न कुछ मांगते थे, जैसे-पुत्र, पति, धन आदि। कहा जाता है कि वह स्वामी सभी की मनोकामना पूर्ण करता था। चारों तरफ अब उसके यश की पताका फहराने लगी, लेकिन जैसे ही 12 वर्ष पूरे हुए, वह स्वामी अन्तर्ध्यान हो गया।

एक बार खण्डगिरि पर रहनेवाले एक निराहारी स्वामी की चर्चा शुरू हुई कि एक ऐसा स्वामी वहाँ रहता है जो पानी के अतिरिक्त कुछ भी ग्रहण नही करता है और जो उसके दर्शन करता है, मनोवांछित फल पाता है। खण्डगिरि में भी 12 वर्षों तक निराहारी स्वामी रहा। एक दिन अचानक निराहारी स्वामी अन्तर्ध्यान हो गया।

फिर चर्चा की विषय बनी ढेंकानाल और कटक के रास्ते के बीच की एक पहाड़ी, जहाँ खीर स्वामी रहता था। एक ग्वाले ने खीर (दूध) को ग्रहण करने वाला वह खीर स्वामी 12 वर्षों तक वहाँ के लोगों की मनोकामना पूर्ण करता रहा। ऐसा लोगों का मानना है कि ढेंकानाल के तत्कालीन राजा को खीर स्वामी की असीम अनुकम्पा से पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई।

एक और लीला कुछ वर्षों बाद सम्बलपुर के एक गाँव में सुनाई पड़ी। एक अंधा चरवाहा उस गाँव में रहता था, नाम था उसका भीमा भोई। वह प्रतिदिन अपने मवेशियों के साथ जंगल जाता था। दिन भर के बाद जब शाम को वह घर लौटता था, तब उसे देखने के लिए रास्ते में अपार भीड़

इकट्ठी हो जाती थी, क्योंकि भीमा भोई देखने में तो अंधा था, लेकिन प्रतिदिन अपनी गायें चराने जंगल जाता और शाम को वापस लौटता था।

भीमा भोई के जीवन में एक ऐसी रात आई जिसने उसका जीवन सुधार दिया। एक रात जब वह अपनी गायों को चराकर घर लौटा, खा-पीकर सो गया। अचानक उसे अपने दरवाजे पर दस्तक का आभास हुआ। उसने दरवाजा खोला। देखा कि साक्षात् विष्णु रूप में जगन्नाथजी खड़े हैं। उसने बार-बार अपनी आँखों को मला और देखा। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि वे प्रभु जगन्नाथ थे।

कुछ देर बाद प्रभु मुस्कुराते हुए भीमा भोई से बोले- ''भक्त! तुम्हें मेरी महिमा से सम्बन्धित गीत लिखकर गाना होगा।'' भीमा भोई ने जवाब दिया- ''भगवन! मैं अनपढ़, गाय चरानेवाला, आपकी महिमा के गीत कैसे लिखकर गा सकता हूँ? प्रभु ने कहा- ''तुम सब कुछ कर सकते हो।'' जैसे ही यह आवाज भीमा भोई के कानों में पड़ी और जब उसने अपनी आँखें खोली तो विष्णु की साक्षात् मूर्ति गायब हो चुकी थी।

आज भीमा भोई प्रभु जगन्नाथ के भक्तों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। उसके महिमा गीत आज अमर बन चुके हैं।

बड़े भाई बलभद्र पर महाप्रभु की कृपा

एक दिन जगन्नाथ जी के बड़े भाई बलभद्र जी ने जगन्नाथ जी से उनकी पत्नी लक्ष्मीजी की शिकायत। उन्होंने कहा-''जगन्नाथ, मुझे यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगता कि लक्ष्मी दिन-दिनभर मन्दिर से बाहर रहे। कल रात की बात है, वह चण्डाल के घर गई और रात को लौटकर आई भी नहीं। देखो, या तो तुम लक्ष्मी को कहो कि वह घर से बाहर न जाय, नहीं तो मैं मन्दिर छोड़कर कहीं और चला जाऊँगा। सोचा लो, तुम्हें कौन प्रिय है!'' जगन्नाथ जी ने सदा की तरह बड़े भाई की आज्ञा को शिरोधार्य किया और कहा-''ठीक कहते हैं आप बड़े भाई, ऐसी स्त्री के लिए मेरे यहाँ कोई जगह नहीं है। आने दीजिए, लक्ष्मी को, उसे तुरंत कहता हूँ कि या तो घर से बाहर जाना बंद करे नहीं तो यह घर हमेशा के लिए छोड़कर चली जाय।''

ठीक उसी समय चण्डाल के यज्ञ से लक्ष्मी जी लौटी और देर से आने का कारण भी बताया। लेकिन यहाँ तो बड़े भाई बलभद्र जी की बात रखनी थी। जगन्नाथ जी ने कहा, ''देखो लक्ष्मी, बड़े भैया की शिकायत है कि तुम घर से हमेशा बाहर रहती हो और मैं भी सोचता हूँ कि यह ठीक नहीं है। इसलिए तुम आज से घर छोड़कर कहीं ओर चली जाओ। इसी में तुम्हारी भी भलाई है और बड़े भैया की भी।''

लक्ष्मी जी मुस्करायीं और कहा-''ठीक है, अगर मैं तुम्हें पसंद नहीं हूँ, मेरा व्यवहार तुम्हें अच्छा नहीं लगता है, तो आज से मैं चली जा रही हूँ, लेकिन सोच लो, फिर मेरे पास कभी मत आना और न यह कहना कि मैं वापस आऊँ।'' यह कहकर लक्ष्मी जी चली गईं।

रात के बाद सुबह हुई। सुबह से दोपहर होने को आई, लेकिन कोई पुजारी न तो जगन्नाथ जी को, न ही बलभद्र जी को पूछने के लिए आया और न उन्हें भोग आदि दिया। दोनों भाई निराश होकर सोचने लगे-करें तो क्या करें? अपने पेट की आग कैसे बुझाएँ? दोनों ने विचार किया कि वे वेष बदलकर मन्दिर से बाहर जाएँगे और कुछ खा लेंगे।

दोनों भाई वेष बदलकर चल दिए। रास्ते में कुछ दूर जाने के बाद एक भुंजावाला मिला। दोनों बहुत खुश हुए और विचार किए कि चलो कुछ तो खाने को मिला। उन्होंने भुंजेवाले से भुंजे की मांग की। भुंजावाला बेचारा थोड़ा-सा भुंजा देना चाहा, लेकिन लक्ष्मीजी ने पवन देवता को मना कर दिया। अत: चाहकर भी दोनों भाई भुंजा नहीं खा सके।

अब दोनों भाई चले समुद्र के किनारे। वहाँ पहुँचने पर देखा कि एक महिला गरीबों को भोजन करा रही है। पहले तो सोचा कि चलकर वे भी खा लें, कौन देखता है, लेकिन फिर विचार किया कि चलकर उससे चावल दाल आदि मांगते हैं और स्वयं खाना पकाकर खाते हैं। वे दोनों उस महिला के पास गए और चावल-दाल आदि की मांग की। महिला ने सब कुछ दे दिया, लेकिन अग्नि देवता को हिदायत दे दी कि वे जले नहीं। दोनों आग जलाते-जलाते थक गए, लेकिन आग जलने का नाम नहीं ली।

लाचार होकर फिर वे उन्हीं गरीबों की पंक्ति में खड़े हो गए, जहाँ वह

महिला अपने हाथों से खाना खिला रही थी। जब उन दोनों की बारी आई तो देखते हैं कि वह महिला कोई और नहीं साक्षात् लक्ष्मी जी हैं। दोनों ने अपनी गलती स्वीकार की और लक्ष्मी जी को मनाकर वापस श्रीमन्दिर ले आए।

लेखक पर महाप्रभु की असीम कृपा

बात जून 17, 1998 की है। लेखक आवश्यक कार्य हेतु नई दिल्ली गया हुआ था। 17 तारीख को लेखक को पुरुषोत्तम एक्सप्रेस से भुवनेश्वर लौटना था। लेखक ने सुबह होटल खाली किया और अपनी अटैची नई दिल्ली रेलवे स्टेशन के क्लॉक रूम में रख दी। शाम को जब वह अपनी अटैची लेने क्लॉक रूम गया तो वहाँ उसकी अटैची नहीं थी। लेखक का सारा सामान, उसकी शैक्षणिक योग्यता आदि से सम्बन्धित सभी मूल प्रमाणपत्र भी उसी अटैची में थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि इस पुस्तक 'महाप्रभु जगन्नाथ' की पाण्डुलिपि और प्रूफ दोनों उसी में थे। लेखक रेलवे अधिकारी को अपनी शिकायत दर्ज कराकर खाली हाथ भुवनेश्वर वापस लौटा। आते समय लेखक ने बस इतना ही कहा–"प्रभु, अब सब कुछ मेरा आपके हाथ में।"

19 तारीख को जब वह भुवनेश्वर वापस लौटा तो उसके साथ केवल निराशा थी, लेकिन उसी दिन नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से रात में फोन आया कि अटैची मिल गई है। लेखक ने बीजू पटनायक हवाई अड्डा, भुवनेश्वर के नियन्त्रक श्री के.के. मेहरोत्रा के सहयोग से वह अटैची प्राप्त की।

इस प्रकार अनेक रूपों में प्रभु जगन्नाथ पुरी में अपनी लोक-लीलाओं के साथ आस्था और विश्वास के इष्टदेवता, गृहदेवता, राज्य देवता और विश्वदेवता के रूप में अपने श्रीमन्दिर की रत्नवेदी पर विग्रह के रूप में अपनी बहन सुभद्रा और बड़े भाई बलभद्र के साथ विराजमान हैं। जो भी उनके दर्शन करता है, भाई-चारे, एकता, शांति, सर्वधर्म समन्वय और विश्वबन्धुत्व का महाप्रसाद पाता है। वास्तव में, ये भक्तों की आस्था और विश्वास के जगन्नाथ बने पुरी में बैठे हैं। अपने अपलक नेत्रों से दुनिया को हमेशा देखते हैं और भविष्य का सही रास्ता दिखला रहे हैं। जय जगन्नाथ!

महाप्रभु का नव कलेवर

(क) नव कलेवर : क्या और क्यों?

महाप्रभु जगन्नाथ जी का नवकलेवर शास्त्रीय परम्परा के अनुसार निर्धारित समय पर पुरी में संपन्न होता है। बारह वर्षों में (या इससे कम या अधिक अंतराल के बाद) जब दो आषाढ़ मास आते हैं, तब यह महोत्सव संपन्न होता है। शास्त्रीय विधान के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक प्रसंगों में भी महाप्रभु के नवकलेवर की अनेक घटनाएँ मिलती हैं।

अनेक बार श्रीक्षेत्र और महाप्रभु को बाहरी आक्रमण का सामना करना पड़ा था। ऐसे संकट की घड़ी में महाप्रभु को पुरुषोत्तम क्षेत्र छोड़ना पड़ा था। बाद में संकट टल जाने पर महाप्रभु की नवकलेवर के साथ श्रीक्षेत्र में पुनः प्रतिष्ठा की गई। एक बार विदेशी रक्तबाहु ने आक्रमण किया जिसके फलस्वरूप महाप्रभु के पलायन की घटना का वर्णन मिलता है।

मादला पांजि (पंचांग) के अनुसार ओडिशा में नरपति शोभन देव के शासनकाल के दूसरे वर्ष में रक्तबाहु के सेनापतित्व में यवनों ने पुरुषोत्तम क्षेत्र पर आक्रमण किया था। वे शोभन देव भौमकर वंश के शुभंकर देव प्रथम थे और उनका शासन काल आठवीं एवं नवीं शताब्दी का रहा था। रक्तबाहु थे राष्ट्रकूट राजा तृतीय गोविन्द। रक्तबाहु के नेतृत्व में पुरुषोत्तम क्षेत्र पर आक्रमण करनेवाले यवन 'मुरुण्ड' जाति के आक्रमणकारी थे। रखाल दास बनर्जी के मतानुसार वे कुशान थे। इस बारे में विचारों में भिन्नता के बावजूद कहा जा सकता है कि श्रीक्षेत्र-पुरी और श्रीजगन्नाथ मन्दिर किसी एक विदेशी आक्रमणकारी दल का शिकार हुआ था। मादला पांजि में वर्णित तथ्य के अनुसार शोभन देव के काल में दिल्ली से रक्तबाहु के आक्रमण के दौरान महाप्रभु के सेवकों ने राजा की अनुमति से महाप्रभु की प्रतिमा को सुनुपुर गोपली में ले जाकर एक मंडप में विराजमान किया था। मुगलों के आक्रमण के समय सेवकों ने महाप्रभु को जमीन में गाड़कर उस पर एक वृक्ष लगा दिया था।

रक्तबाहु के श्रीक्षेत्र पर आक्रमण के पूर्व ही महाप्रभु के सेवक आनेवाली विपत्ति से अवगत हो गए थे। उस ऐतिहासिक घटना के प्रमाण स्वरूप सोनपुर से गोपाली ग्राम के बीच एक जगन्नाथ मंदिर अभी भी है। रक्तबाहु ने जगन्नाथ मंदिर को खाली देखा तो क्रोध से उन्मत्त होकर विध्वंशलीला प्रारंभ कर दी और श्रीक्षेत्र श्रीहीन हो गया। यह युग ओड़िशा का अन्धकार युग माना जाता है।

इसी प्रकार 146 वर्ष बाद केशरी वंश के संस्थापक ययाति केशरी के राज्यकाल में इस अन्धकारमय युग का अवसान हो गया। उन्होंने महाप्रभु का पुनरुद्धार कराकर श्रीमंदिर में पुनर्प्रतिष्ठित कराया। लेकिन इतने वर्षों तक जमीन में गड़े होने के कारण विग्रह जर्जर हो गए थे। इसलिए विधिपूर्वक नए दारू (काष्ठ) लाकर नई प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा की गई थी।

केशरी, गंग और सूर्य वंशों के राज्यकाल में ओड़िया जाति के आराध्य देव श्रीजगन्नाथ शांति से पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहे। ओड़िशा के अंतिम स्वतंत्र राजा मुकुन्द देव गजपति के राज्यकाल तक अच्छे दिन रहे। 1568 में मुकुन्द देव की मृत्यु के बाद उनके दुर्बल उत्तराधिकारी के राज्यकाल में ओड़िशा में राजनैतिक अस्थिरता आ गई। ओड़िया जाति के घोर दुर्दिन आए। बंगाल के नवाब के सेनापति कालापहाड़ ने ओड़िशा पर आक्रमण किया और अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को नष्ट कर दिया। भुवनेश्वर में अपनी विध्वंशलीला के बाद कालापहाड़ पुरी की ओर बढ़ा। इस बार भी महाप्रभु के सेवकों ने तत्परता के साथ देव-प्रतिमाओं को चिल्का क्षेत्र के पारीकुद में गुप्त रूप से स्थापित किया। कालापहाड़ पुरी में विध्वंश मचाने के बाद जगन्नाथ की तलाश में यथास्थान पर पहुँच गया। मादला पांजी के अनुसार, ''चिल्का के मुहाने को पार कर समुद्र में कमर तक पानी में प्रवेश कर जगन्नाथ जी के विग्रह को निकाला और हाथी पर लाद कर उसे ले गया। गंगा के किनारे ले जाकर उसने विग्रह को आग में डाल दिया। किंतु ऐसा करने से अचानक उसका शरीर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। तब काजी ने बताया कि ओड़िया जाति के

देवता को आग में झोंकने का प्रयास करने के कारण कालापहाड़ का शरीर फट गया। यह सुनकर कालापहाड़ के बेटे ने जगन्नाथ विग्रह को और कुछ न कर तुरंत गंगा में प्रवाहित कर दिया। जगन्नाथ जी को जब कालापहाड़ ले जा रहा था, तो जगन्नाथ जी का भक्त विशर महांति उसके पीछे लग गया, उसने अनशन कर उससे विग्रह की मांग की। उसने जगन्नाथ जी के विग्रह से ब्रह्म को निकाल कर मृदंग में छिपा लिया और लाकर कुजंगगढ़ चला आया। कुजंग राजा ने नवकलेवर कराकर जगन्नाथ जी को पुनर्प्रतिष्ठित कराया।''

ओड़िशा में जब भोई वंश की स्थापना हुई। इस वंश के संस्थापक रमाई राउतरा उर्फ रामचन्द्र देव माने जाते हैं। ये ओड़िशा के स्वतंत्र गजपति के रूप में प्रतिष्ठित हुए। राजा ने जगन्नाथ जी को पुनर्प्रतिष्ठित किया। ''चकड़ा पोथी'' के अनुसार-रात में राजा को भगवान ने स्वप्न में निर्देश दिया कि वे कुजंगगढ़ में विराजमान हैं। उस शाखा की दारू से नई मूर्ति राजा गढ़े। बालि नृसिंह से उन्हें लाकर श्रीमन्दिर के रत्नसिंहासन पर विराजमान कराए।'' अगले दिन राजा ने सभासदों, पुजारियों, सामंतों और कारीगरों को बुलाकर स्वप्न की बात बताई। राजा ने बड़े पद्मनाभ पटनायक को आज्ञा दी। वे कुजंग से महाप्रभु को ले आए। राजा ने नए विग्रह का निर्माण किया। उनमें ब्रह्म को स्थापित किया।

मादला पांजि के अनुसार-नवें वर्ष में राजा ने कुजंग गढ़ से ब्रह्म मंगवाया। खुरुधा में वनयज्ञ किया और श्रीमूर्तियों का निर्माण किया। 11वें वर्ष में कर्क राशि के सर्यू के 18वें दिन श्रावण शुक्ल नवमी के दिन श्री पुरुषोत्तम को बड़े मन्दिर में रत्न सिंहासन पर विराजमान किया। ब्रह्म लानेवाले शवर महान्ति को नायक बनाया। सभी संन्यासी, ब्रह्मचारी, भट्टमिश्रों ने महाप्रसाद सेवन किया और श्री रामचन्द्र देव को द्वितीय इन्द्रद्युम्न की उपाधि दी। इसके साथ ही कुछ वर्षों से बन्द रथयात्रा का फिर से प्रचलन शुरू हुआ।

रामचन्द्र देव के बाद उनके पुत्र पुरुषोत्तम देव राजा बने। इस बीच

मुगल शासक अकबर की मृत्यु हो गई। अब एक बार फिर उत्कल पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। लुटेरे और धर्मान्ध मुगल सरदारों के आक्रमण से रक्षा के लिए श्रीजगन्नाथ जी को बार-बार श्रीक्षेत्र से निकाल कर राज्य के दुर्गम क्षेत्रों में स्थानान्तरित किया गया। राज्य की संपत्ति तथा मान सम्मान सबसे बढ़कर भगवान को मानकर ओड़िशा के राजा तथा यहाँ की प्रजा जगन्नाथ जी की रक्षा में लग गई।

पहली बार 1609 में जब कटक के सुबेदार मकरम खाँ ने पुरी पर आक्रमण किया, तब श्री जगन्नाथ जी को पुरी से आठ किलोमीटर दूर कपिलेश्वर पुर में श्रीजगन्नाथ जी को छुपाकर रखा गया। यहीं पर भगवान की डोलयात्रा और बाहुड़ा यात्रा संपन्न हुई। 1610 में केशुदास नामक और एक मुगल सुबेदार ने रथयात्रा के वक्त पुरी पर फिर से आक्रमण कर दिया। आक्रमणकारियों ने देवताओं के तीनों रथों को जला दिया। मादला पांजि के अनुसार परमेश्वर को पालकियों में कन्धो पर उठाकर श्री मन्दिर में विराजमान करवाना पड़ा। 1615 में राजा टोडरमल के पुत्र कल्याण मल जब ओड़िशा के सबूदार बने तब उन्होंने खोरधा पर आक्रमण किया था। इस समय सेवकों ने श्रीमन्दिर पर आक्रमण की आंशंका से श्री जगन्नाथ जी को चिल्का के किनारे महीसानासी पर्वत पर रखा। 1617 में मकरम खाँ ने खोरधा पर कब्जा कर पुरी पर आक्रमण किया। इस विपत्ति के वक्त श्रीजगन्नाथ जी को बाणपुर की सीमा पर गजपदा में लेकर नदी में नाव पर विराजमान किया गया। दो वर्ष बाद मकरम खाँ के वापस जाने पर श्रीजगन्नाथ को लेकर फिर से पुरी में प्रतिष्ठित किया गया। 1622 में भोई वंश के श्री नरसिंह देव के राज्यकाल में सूबेदार अहम्मद बेग ने खोरधा पर आक्रमण किया। इस समय राजा नरसिंहदेव ने अपने परिवार और श्री जगन्नाथ जी को रणपुर के माणित्री दुर्ग में स्थानांतरित कर दिया। इसके बाद तत्कालीन सम्राट के पुत्र विद्रोही खुर्रम के हिन्दू सेनापति भीम सिंह ने जगन्नाथ जी के उद्धार के लिए नरसिंह देव की सहायता की। फिर खुर्रम के बंगाल से भागकर ओड़िशा

में शरण लेने पर श्रीजगन्नाथ पर फिर विपत्ति आ गई। उससे रक्षा के लिए राजा नरसिंह देव ने साक्षीगोपाल मन्दिर में श्रीजगन्नाथ को रखा। खुर्रम के ओड़िशा से विदा लेने के बाद मुगलों की काली साया टली। श्रीक्षेत्र से जगन्नाथ के प्रस्थान और प्रत्यावर्त्तन के प्रत्येक अवसर पर अन्न महाप्रसाद का पुनः प्रवर्त्तन हुआ था। इसके साथ ही श्रीविग्रहों का दारू-परिवर्तन और नवकलेवर विधि का पालन किया गया।

दिल्ली के सम्राट औरंगजेब के काल में उपर्युक्त विपत्ति चरम सीमा पर थी। 1693 में दिव्यसिंह देव खोरधा के राजा थे। 1698 में नायब नवाब एकराम खाँ ने श्रीजगन्नाथ मन्दिर पर आक्रमण किया। इतिहासकार कृपासिन्धु मिश्र के मतानुसार पण्डों ने श्री जगन्नाथ के विग्रहों से दारू ब्रह्म को निकाल कर विमला मन्दिर के पिछवाड़े कहीं छुपा दिया। एकराम खाँ ने श्रीजगन्नाथ के विग्रहों को नष्ट कर दिया और मन्दिर की काफी लूटपाट की। इधर दिव्यसिंहदेव एकराम खाँ के भय से छुप गए।

मुगलों का सामना करना ओड़िशा के राजपरिवार के लिए आसान नहीं था। इसलिए राजा ने इस राष्ट्रीय अपमान को सह लिया, किंतु अपने कौशल से श्रीजगन्नाथजी और श्रीमन्दिर को ध्वंस से बचा लिया। मादला पांजि के अनुसार इन दिनों भोग के वक्त घण्टी आदि नहीं बजती थी, रथयात्रा की परम्परा भोगमण्डप के अन्दर ही निभाई जाती थी।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिव्यसिंहदेव ने अठरगढ़ के राजाओं को एकत्र कर ओड़िशा से मुगल सेना को भगा दिया। श्रीजगन्नाथ और श्रीक्षेत्र के पुनरुद्धार की व्यवस्था की।

1731 में फिर श्रीजगन्नाथ पर विदेशी आक्रमण हुआ। उस समय गजपति द्वितीय रामचन्द्र खोरधा के राजा थे। इनके शासनकाल में ओड़िशा की आन्तरिक-कलह का मौका पाकर मुगल सूबेदार तकि खाँ ने खोरधा पर आक्रमण किया। राजा रामचंद्र नजरबन्द कर लिए गए। इस नाजुक समय में श्रीमन्दिर पर मुगलों के उपद्रव की आशंका छाई रही। इसलिए उनको गुप्त रूप से बाणपुर की नदी के हरीश्वर मंडप में लाया

गया। पुरी से जगन्नाथ जी के प्रस्थान की सूचना पाकर तकि खाँ ने 1733 में फिर खोरधा पर आक्रमण कर दिया। इस बार राजा ने श्रीजगन्नाथ को बाणपुर से हटाकर खलिकोट की सीमा पर टिकालि में रखा। उन्होंने स्वयं बोलगढ़ में जाकर शरण ली। तकि खाँ रामचन्द्र के पुत्र भागीरथ कुमार को खोरधा की गद्दी पर बैठकर मुर्शिदाबाद लौट गया। इसी बीच रामचन्द्र देव ने पुनः खोरधा पर अधिकार कर श्रीजगन्नाथ जी को वापस लाकर पुरी में पुनर्प्रतिष्ठित किया। इस वर्ष दो आषाढ़ मास पड़े थे। इसलिए श्रीजगन्नाथ जी का नवकलेवर संपन्न हुआ।

श्रीजगन्नाथ की रथयात्रा का समाचार सुनकर कटक के मुगल सूबेदार दशरथ खाँ ने क्रोधित होकर फिर खोरधा पर आक्रमण कर दिया। इस बार रामचन्द्र देव ने तीनों श्रीविग्रहों को आठगढ़ के मेरेदा ग्राम में स्थानांतरित कर दिया। वहाँ के लोगों ने दो महीने तक अथक परिश्रम करके वहाँ श्रीजगन्नाथ का एक मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर में आज भी प्रमाणस्वरूप तीनों विग्रहों की पूजा होती है।

रामचन्द्र देव के बाद उनके पोते श्री वीरकिशोर देव खोरधा के राजा बने। इनके राज्यकाल में ओड़िशा मराठों के अधीन था। वीरकिशोर देव मराठों से सहायता प्राप्त कर मराठा शासकों का प्रियपात्र बन गए। इस बदली परिस्थिति में राज्यसेवक वीरकिशोर देव और धर्मनिष्ठ हिन्दू मराठा शासकों के समय में श्रीमन्दिर की स्थिति शान्तिपूर्ण रही। इसके साथ ही लगभग 200 वर्षों की मुगल यातनाएँ समाप्त हो गईं।

जब-जब ओड़िशा में अन्तर्विवाद हुआ, उन दुर्दिनों में इस जाति के हृदयपिंड स्वरूप श्रीजगन्नाथ दारूब्रह्म बाहरी शत्रुओं के आक्रमण के शिकार हुए। ओड़िया जाति की शान्ति और सुरक्षा खतरे में पड़ने के साथ इष्टदेव तथा राष्ट्रीय देवता श्रीजगन्नाथ का अस्तित्व भी खतरे में पड़ा। युगों से श्रीजगन्नाथ इस जाति की आत्मा स्वरूप रहे, इस जाति के उत्थान-पतन से प्रभावित रहे।

इस प्रकार महाप्रभु के नव-कलेवर की परम्परा अपने उत्थान-पतन

के पथरीले रास्ते को पार करती हुई अपनी पतितपावनी भक्ति की मन्दाकिनी में आ मिली है।

(ख) नव कलेवर : कैसे

श्रीजगन्नाथ जी के नवकलेवर की परम्परा भारत की सांस्कृतिक आस्था का प्रमाण है। विग्रहों का नया शरीर धारण करना, आत्मा और शरीर के संबंध और पुनर्जन्म के तथ्य को चरितार्थ करता है।

प्राचीन काल में जब पुराण वर्णित दारू समुद्र में बहते हुए आया था और विचित्र बढ़ई ने इससे विग्रह निर्माण के लिए प्रयास शुरू किया था, उस वक्त भी दो आषाढ़ के महीने पड़े थे। उसके बाद से ही नवकलेवर की परम्परा शुरू हुई थी।

देव-विग्रहों का नवकलेवर शास्त्रीय विधि-विधान से होता है। ओड़िशा का इतिहास इसका साक्षी है कि विदेशियों और विधर्मियों के आक्रमण से बचाने के लिए उत्कलवासियों ने अनेक बार श्रीजगन्नाथ जी के विग्रहों को श्रीमन्दिर के रत्नसिंहासन से हटाकर अन्यत्र सुरक्षित रखा।

सामान्यतः जिस वर्ष दो आषाढ़ मास पड़ते हैं। उसी वर्ष श्रीजगन्नाथ जी का नवकलेवर होता है। जोड़ा आषाढ़ साधारणतः 8 वर्ष में, 11 वर्ष में या 19 वर्ष में आता है। नवकलेवर के लिए वनयज्ञ होता है। चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मध्याह्न में भगवान जगन्नाथ जी की विशेष पूजा के बाद इसका आरम्भ होता है। तीन फूल मालाएँ जगन्नाथ, सुभद्रा एवं बलभद्र को अर्पण करके सेवक इन मालाओं को दइतापति को सौंपते हैं। आज्ञामाल लेकर, जगन्नाथ जी का लाल पाटवस्त्र पहनकर और सिर में बाँधकर दइतापति श्रीमन्दिर से निकलते हैं। अनेक प्रकार के वाद्यों की ध्वनि से चारों दिशाएँ प्रकम्पित हो उठती हैं। दइतापतियों के गजपति महाराज के महल तक पहुँचते ही राजगुरु द्वारा दी गई सुपारी मुख्य दइता के हाथ में सौंप देते हैं। सुपारी लेकर दइतापति श्रीजगन्नाथवल्लभ मठ में विश्राम करते हैं। विश्राम के बाद वे काकटपुर जाते हैं। वनयज्ञ यात्रा में भाग लेने वालों में दइतापति, सुई, महापात्र, परिमहापात्र, लेंका, मन्दिर

पुलिस, ब्राह्मण, करण और मन्दिर-करण होते हैं। काकटपुर जाकर यात्री देउलिमण्डप में पहुँचते हैं। वहाँ काकटपुर की देवी मंगला के सेवक शोभायात्रा में आकर उनका स्वागत करते हैं। दइतापति महाप्रभु की आज्ञामाल और सुदर्शन को लेकर मंगला के पास रखते हैं।

श्रीक्षेत्र से लाए गए भोग और पूजन सामग्री दइतापति मंगला देवी को अर्पण करते हैं। इसके पहले जगन्नाथ जी का लाल नेत मंगला के मन्दिर पर बाँधा जाता है। इसके बाद माँ को वे चोआ, चन्दन, अगरू मिश्रित 108 कलश जल से स्नान कराकर माजणा कराते हैं। इसके बाद माँ को नई साड़ी, गहने और फूलमालाएँ पहनाई जाती हैं। भोग लगाए जाने के बाद वे माँ के पास अधिया पढ़ते हैं। सामान्यत: अधिया पढ़ने के दूसरे दिन स्वप्न में पहले सुदर्शन के दारू के प्राप्ति स्थान के बारे में निर्देश मिलता है। फिर क्रमश: बलभद्र, सुभद्रा एवं जगन्नाथ के दारू का निर्देश मिलता है।

नवकलेवर के लिए जिस वृक्ष को चुना जाता है, उसमें निम्न लक्षण होने चाहिए–

वृक्ष नीम का होना चाहिए। वृक्ष की लम्बाई 7 फुट से 10 फुट के बीच होनी चाहिए। उसमें तीन प्रधान शाखाएँ होनी चाहिए। उस वृक्ष के निकट मन्दिर, मठ, नदी, तालाब, श्मशान, दीमक की मांद, बेल का पेड़, वरुण का पेड़, साहाड़ा का पेड़, तुलसी का पौधा और गड्ढा होना चाहिए। उस दीमक-मांद में साँप उस वृक्ष के रखवाले के रूप में रहना चाहिए। उस वृक्ष की कोई डाल कटी नहीं होनी चाहिए। उस वृक्ष पर किसी पक्षी द्वारा कोई घोंसला नहीं बना होना चाहिए। वृक्ष के तने की मोटाई 2 मीटर से 3 मीटर के बीच होनी चाहिए। वृक्ष पर शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्न मिलने चाहिए।

दारू चयन के बाद शबर पल्ली का आयोजन होता है। यथाविधि वनयज्ञ होता है। दारू को पहले से रस्सी से बाँध दिया जाता है। वृक्ष को आज्ञामाल अर्पित की जाती है। इस उपलक्ष्य में विधिवत यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, अंकुर-रोपण गृह निर्मित होकर वनयज्ञ होम आरम्भ होता है।

इसमें 5 वेदज्ञ ब्राह्मण हिस्सा लेते हैं। इसके बाद वृक्ष काटा जाता है। वृक्ष कटकर भूमि पर गिरने तक सभी उपवास रहते हैं। वनयज्ञ में पाताल नृसिंह के मंत्र से पूजा होती है। वनयज्ञ के मुख्य रूप से आचार्य, ब्रह्मा और पुस्तकाचार्य हिस्सा लेते हैं।

श्री मन्दिर में दारू को लाकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन विशेष यज्ञकर्म होते हैं। नए दारू को स्नान और प्राणन्यास कराया जाता है। श्रीसूक्त और पुरुषसूक्त से वेदवेद्य जगन्नाथ बोधन होता है। गजपति महाराज यज्ञ में पूर्णाहुति देते हैं। दान, आरती, पुष्पांजलि विधिवत अनुष्ठित होते हैं। इस प्रकार यज्ञ और प्रतिष्ठा कर्म के बाद मन्दिर को परिशुद्ध किया जाता है। इसके पहले सांध्य आरती और बड़सिंहार धूप होता है। मन्दिर के बाहरी द्वार पर बाईस पावच्छ सीढ़ियों पर एकमात्र श्रीजगन्नाथ के पाटखण्डा हाथ में लेकर मन्दिर के करण (कायस्थ) पहरा देते हैं। इस समय समग्र मन्दिर अन्धकार में डूबा होता है। नए विग्रह पहण्डि (पैदल-नृत्य-कीर्तन-सहित यात्रा) में निर्माण मण्डप से आकर अणसर पिण्डि पर विराजमान होते हैं। रात्रि में शुभ मुहूर्त में पुरातन विग्रहों से ब्रह्म को निकाल कर नए विग्रहों में स्थापित किया जाता है। दारू के नाभिकमल में यह ब्रह्म होने के कारण इनका दारूब्रह्म नाम सार्थक होता है। इसके बाद नए विग्रहों को रंग-रोगन आदि से अलंकृत किया जाता है।

पुराने विग्रहों को श्रीमन्दिर के कोइलि बैकुण्ठ स्थित श्मशान में शिआळि लता के नीचे समाधि दे दी जाती है। कहते हैं कि विग्रह गोलोक विश्राम लेते हैं। पुरानी प्रतिमाओं के साथ रथ के सारथी, घोड़े, पार्श्वदेवता, तोता, द्वारपाल, धवजादण्ड और तख्त एवं शय्या आदि भी गोलोक विश्राम अर्थात् समाधि ले लेते हैं। यह समाधि पर्व भगवान जगन्नाथ के श्रीकृष्णावतार की स्मृति दिलाता है। पुराण वर्णित तथ्य अनुसार श्रीकृष्ण का अदग्ध पिण्ड दारूब्रह्म के रूप में समुद्र में बहते हुए नीलसिन्धु के किनारे आकर लगा था। इसी दारू से सर्वप्रथम जगन्नाथ जी के विग्रहों का निर्माण हुआ था। जारा शवर के तीर से घायल होकर

श्रीकृष्ण ने प्राण त्यागे थे।

श्रीजगन्नाथ काष्ठ (दारू) निर्मित विग्रह हैं। 'वृहत्संहिता' में वराहमिहिर ने कहा है कि काष्ठ निर्मित मूर्ति की उपासना करने से श्री, बल, वीर्य, विजय और आयु मिलती है। फिर 'वामदेव संहिता' के अनुसार विभिन्न वृक्षों में नीम का पेड़ वास्तविक दारू बनने के लिए उपयुक्त होता है। 'प्रतिमा-लक्षण सौधागम' में भी इसका समर्थन किया गया है।

पुराना नीम का वृक्ष मलय पवन के स्पर्श से चन्दन में बदल जाता है। इस बात को कवियों ने अपने काव्य में वर्णित किया है और फिर नीम का पेड़ खारा होने के कारण जल्दी नष्ट नहीं होता और इसमें कीड़े आदि भी नहीं लगते। नीम का पेड़ सभी वर्णों के व्यक्तियों द्वारा पूज्य होता है। महाप्रभु जाति, धर्म, वर्ण के निरपेक्ष सभी के देव हैं और फिर जिन दारू से श्रीजगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शन की मूर्तियाँ निर्मित होती है, उनका वर्ण क्रमशः काला, श्वेत, पीला और लाल होना चाहिए। दूसरा लक्षण है कि इन सभी दारू का स्वाद तिक्त होने के बदले मीठा होना चाहिए।

सर्वोपरि नवकलेवर यात्रा शवर-संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक थी। युगों से श्रीजगन्नाथ शबर देवता के रूप में पूजित होते आ रहे थे। इसलिए विश्वावसु के वंशधर दइतापतिगण ही दारू लाने का संपूर्ण कार्य अत्यन्त निष्ठा और पवित्रता से करते हैं और फिर ये विधि-विधान सामाजिक संस्कार और परम्परा से अलग नहीं है। इसलिए नवकलेवर सभी के मन को छू जाता है।

ऋतुचक्र में आषाढ़ मास का विशेष महत्व होता है। ग्रीष्मकाल के बाद वर्षा के आगमन से वृक्ष-लता नवपल्लवित हो उठते हैं। कृषक तथा प्रत्येक मानव के लिए आषाढ़ का पहला दिन महत्वपूर्ण होता है। चारों ओर छाई हरियाली महाप्रभु की रथयात्रा के महोत्सव की महिमा को और महान् बनाती है। नवकलेवर से पुनर्जन्म और आत्मा की अमरता का हमें संदेश मिलता है।

(ग) नव कलेवर १९९६

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्यंति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यान्यानि संगाति नवानि देही ॥

जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को छोड़कर मनुष्य नये वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी प्रकार महाप्रभु जगन्नाथ अपने पुराने कलेवर को छोड़कर नए कलेवर धारण करते हैं, जिसे नव कलेवर कहा जाता है।

नव कलेवर का संबंध महाप्रभु की रथ-यात्रा के साथ जुड़ा हुआ है। यद्यपि यह रथ-यात्रा की तरह प्रतिवर्ष नहीं होता फिर भी ऐसी मान्यता है कि जिस वर्ष दो आषाढ़ लगता है उसी वर्ष महाप्रभु का नव कलेवर होता है। ऐसा भी देखा गया है कि प्रत्येक 12 वर्षों के अंतराल में नव कलेवर होता है। लेकिन ऐसा भी कभी-कभी संभव नहीं होता। जैसे 1977 के बाद वर्ष 1996 में नव कलेवर हुआ था।

वैसे तो प्रतिवर्ष तीनों विग्रहों (बलभद्रजी, सुभद्राजी और जगन्नाथजी) को अणसर के समय रत्नदेवी से उठाकर लाया जाता है और श्रृंगार पीढ़ा की विधि-पूरी की जाती है। इन्हें चंदन का सात तह लेप लगाया जाता है। 108 घड़े चंदन मिश्रित जल से स्नान कराया जाता है और तब नये वस्त्र आदि पहनाये जाते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सात तह में मात्र छह तह तक ही स्नान कराया जाता है लेकिन नव कलेवर के समय पूरी तरह से दारू विग्रहों को ही बदल दिया जाता है और जो नये विग्रह तैयार होते हैं। वे 'दारू' अर्थात् नीम के होते हैं।

नव कलेवर की विधि बड़ी ही रोचक होती है और यही कारण है कि 1996 में नव कलेवर रथ-यात्रा देखने करीब 15 लाख लोग पुरी आए थे।

1996 के नव कलेवर विधि के तहत 29 मार्च, 1996 से वनयज्ञ शुरू हुआ था। अलग-अलग स्थानों से दारू लाए गए थे। पहली जून से विग्रह

निर्माण शुरू हुआ था।

मान्य परंपरा के अनुसार श्रीमंदिर का खुरी नाइहक (भविष्य वक्ता) सबसे पहले बतलाता है कि किस वर्ष दो आषाढ़ पड़ेगा। उसके बाद पुरी के राजा विभिन्न मठों के प्रतिनिधियों एवं मुख्य सेवकों से विचार-विमर्श करके पवित्र दारू खंभ की खोज हेतु तिथि निर्धारित करते हैं। नव कलेवर वाले वर्ष अणसर की अवधि 15 दिन की जगह एक महीने 15 दिन तक बढ़ा दी जाती है। चैत महीने के शुक्ल पक्ष के 10वें दिन दोपहर के बाद पूजा होती है जिसमें पूजा के बाद पति महापात्र या शबर पुजारी तीन ''आज्ञामाल'' लेते हैं जो लाल रंग के धागे में गुंथा होता है जिसके मध्य भाग में गांठ के रूप में निरमाल्या बंधा होता जिसके द्वारा पता चलता है कि किस विग्रह के साथ कौन-सी पूजा विधि अपनायी जाएगी। जब पतिमहापात्र तीन मालाओं को दईतागण हो देता है, जब सुदर्शन की आज्ञमाल को अपने लिए रख लेता है। तब भीतर छू महापात्र अपने हाथ से पति महापात्र के सिर पर एक लाल पाट बांधता है। दइतागण के सिर पर जो लाल पाट बांधा जाता है उसकी लंबाई चार फीट होती है जबकि पति महापात्र के सिर पर बांधे जाने वाला पाट बड़ा होता है।

1996 में इस विधि के संपन्न होने के उपरान्त एक छोटा जुलूस पुरी के राजा के पास गया। वहां राजा ने उनकी मंगल यात्रा हेतु पान और सुपारी दी और उनके लक्ष्य में सफल होने की मंगल कामना की।

वह दल जिसमें दइतागण, पुजारी और विश्वकर्मा (बढ़ई) आदि थे, उस रात जगन्नाथ वल्लभ मठ में विश्राम किए और दूसरे दिन सुबह अपने वनयज्ञ के लिए प्रस्थान किए। रास्ते में वे सबसे पहले पुरी से लगभग 80 किलोमीटर दूर उत्तरीपूर्वी दिशा में स्थित काकटपुर आए, जहाँ मंगलादेवी का मंदिर है। वे मंगलादेवी से मार्गदर्शन लिए। उनके साथ यज्ञ आदि की सामग्री से लदी हुई एक गाड़ी भी थी।

कहा जाता है कि एक समय में काकटपुर नीम के पेड़ों से भरा जंगल था। सच पूछा जाय तो आज भी पर्याप्त मात्रा में काकटपुर में नीम के पेड़

हैं। हजारों वर्ष पूर्व इसी काकटपुर से नीम काष्ठ लेकर एक समय में नवकलेवर हुआ था। उसी समय से मंगलादेवी की पूजाकर, वनयज्ञ की आशीष लेकर दल आगे बढ़ता है।

उसके बाद दल देउली मठ गया जो वहाँ से कुछ ही दूरी पर पवित्र नदी प्राची के तट पर अवस्थित है। वहाँ वे पूजा व्रत किए और रात में देवी मंगला ने उनसे प्रसन्न होकर उन्हें बताया कि किस दिशा में किस देव-देवी हेतु पवित्र नीम काष्ठ मिलेगा। देवी मंगला के मार्गदर्शन के अनुसार ही सुबह उठकर उन दिशाओं में दल निकल पड़ा।

कहा जाता है कि देवी मंगला की प्रेरणा से चार अलग-अलग नीम वृक्ष चार अलग-अलग दिशाओं में उपलब्ध हुए जिसकी जानकारी दइतागण दिए। सन् 1930 ई. में नवकलेवर के समय प्रभु जगन्नाथ का पवित्र नीम काष्ठकटक जिले के जगतसिंहपुर थाना अंतर्गत रबदीधरकनपुर गाँव में मिला था। कहा जाता है कि पवित्र नीम का पेड़ दो नदियों कुशभद्रा और देवी नदी के बीच स्थित टापू में था। उस वृक्ष पर पद्म, शंख, गदा और चक्र के चिह्न थे। कहा जाता है कि उस वृक्ष की जड़ में एक काला नाग था। बलभद्रजी का पवित्र नीम काष्ठ उस समय पुरी जिले के बाली पटना थाना अंतर्गत वनमालीपुर गाँव में पाया गया था। उस पेड़ की सात शाखाएँ थीं। यह भी कहा जाता है कि उस नीम पेड़ से 2 हाथ की दूरी पर एक सर्प था जो उस नीम पेड़ की जड़ को जकड़े हुए था। सुभद्राजी का पवित्र नीम काष्ठ पुरी जिले के नीमापड़ा थाना अंतर्गत बड़ारन गाँव में पाया गया था। इस पेड़ की पाँच शाखाएँ थीं और पेड़ पर चक्र आदि के चिह्न थे और साँप था।

1996 में जैसे ही पवित्र नीम पेड़ों का पता लगा लिया गया, उन पर आज्ञामाल चढ़ा दी गई। उसके बाद एक शबरपल्ली उस पेड़ के चारों ओर बनाई गई। फिर उस पवित्र नीम पेड़ से नीचे यज्ञ शुरू हुआ। विशेष प्रकार से हजारों लाखों की संख्या में श्रद्धालु भक्त-गण वहाँ पहुंचकर उस दारू ब्रह्म के दर्शन किए। यज्ञ की समाप्ति के उपरांत सबसे पहले दइतापति उस पवित्र नीम पेड़ पर पूर्व विराजमान देव-देवियों से आग्रह किया कि वे

उसे पवित्र कार्य हेतु छोड़कर अन्यत्र चले जाएँ और तब वह चांदी की कुल्हाड़ी से उस पवित्र नीम पेड़ को काटा। उसके बाद विश्वकर्मा (बढ़ई) ने लोहे की कुल्हाड़ी से काटा। दारू खंभ को चार गाड़ियों में लादकर पुरी लाया गया, शेष पेड़ के हिस्सों को (पत्ते आदि) वहीं जमीन के नीचे गाड़ दिया गया। श्रद्धालु भक्तों की भीड़ पूजा-अर्चना, कीर्तन एवं संकीर्तन आदि करती हुई खुशी-खुशी गाड़ी को खींचकर पुरी तक लाई।

सबसे पहले सुदर्शनजी का पवित्र दारू खंभ लाया गया, उसके बाद बलभद्रजी का, उसके बाद सुभद्राजी का और अंत में श्रीजगन्नाथजी का। जब दल पुरी पहुँचा, तब वह सबसे पहले नृसिंह मंदिर के पास रुका जो गुण्डिचा मंदिर के पास है और तब पुरी नरेश को खबर दी गई कि पवित्र दारू ला दिया गया है। जैसे ही राजा को यह शुभ संदेश मिला, वैसे ही सेवायतों का एक रंगा-रंग जुलूस लेकर वे पहुँचे और उस पवित्र दारू खंभ को खींचकर श्रीमंदिर के उत्तरी द्वार से भीतर लाए और कोइली बैकुंठ नामक जगह पर रखे। स्नान यात्रा के पश्चात् कोइली बैकुंठ से पवित्र दारू खंभ को विश्वकर्मा मंडप में विग्रह तैयार करने हेतु लाया गया। आषाढ़ महीने के शुक्ल पक्ष के 14वें दिन विग्रह को तैयार कर दिया गया और उसी दिन उन्हें शाम से लेकर दूसरे दिन दोपहर तक पूरी तरह से रंगकर सुसज्जित कर दिया गया। चारों तरफ से श्रीमंदिर के दरवाजे बंद कर दिए गए। चार दयिता महापात्र अथवा पुजारी ब्रह्म-पिंड को नवीन विग्रह में प्रतिष्ठित कर दिए। ऐसा भी कहा जाता है कि जो दइता ब्रह्म पिंड को प्रतिष्ठित करता है वह कभी उस दृश्य को देख नहीं सकता है। कुछ लोग मानते हैं कि वह ब्रह्म पिंड शालिग्राम पत्थर होता है। नव कलेवर के दौरान पाया गया कि जो पुजारी वह पवित्र कार्य करता है, वह शीघ्र ही स्वर्ग सिधारता है, पर यह बात गलत है।

ब्रह्म-पिंड की स्थापना के बाद विग्रहों की 16 उपचार विधि से पूजा की गई और तब पुराने विग्रहों को दइतागण उठाकर कोइली बैकुंठ में लाए जहां उनके द्वारा उन पुराने विग्रहों को जला दिया गया। यहाँ एक

रोचक परंपरा है कि जिस प्रकार हिंदू धर्म में दाह संस्कार के बाद व्यक्ति को जो औपचारिकताएँ पूरी करनी होती है वे सारी औपचारिकताएँ विग्रह को दाह संस्कार के बाद दइतागण ने भी कीं।

नव कलेवर का त्यौहार न केवल प्रभु जगन्नाथ की सांसारिक परंपराओं को सत्य सिद्ध करता है बल्कि शरीर और आत्मा, आत्मा और जीव के यथार्थ संबंधों को भी स्पष्ट करता है।

1996 में सुदर्शन का दारु कटक जिले के पानीमल गाँव से, सुभद्राजी का समुद्र के किनारे अस्तरंग के पास मालदा गाँव से, बलभद्रजी का कटक से 40 किलोमीटर दूर सालेपुर के पास रामचंद्रपुर से, और जगन्नाथजी का खोरधा शहर से 8 किलोमीटर दूर दधीमाच्छगाड़िया गाँव से लाया गया था। वनयज्ञ का नेतृत्व किया था विद्यापति ने और इनके साथ कुल सौ सेवक गए थे। 1996 की रथयात्रा 17 जुलाई को थी जिसमें 15 लाख श्रद्धालु भक्त पुरी पधारे थे।

अब श्रद्धालु भक्त आनेवाले नवकलेवर की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सच है कि वह भक्त अन्य है जिसने अपने जीवन काल में कम से कम एक बार नवकलेवर की पावन रथ-यात्रा को देखा है।

महाप्रभु की रथयात्रा की परम्परा

महाप्रभु जगन्नाथ की रथ-यात्रा विश्वप्रसिद्ध रथ-यात्रा मानी जाती है। यह सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक रथयात्रा मानी जाती है। इस में विश्व भर के अनेक श्रद्धालु भक्त पुरी धाम आते हैं और प्रभु जगन्नाथ के दर्शन करते हैं।

रथयात्रा प्रतिवर्ष हमें शान्ति, सद्भाव, प्रेम भक्ति और एकता का पावन सन्देश देती है। इसे भक्ति महोत्सव, पतितपावन महोत्सव एवं सांस्कृतिक महोत्सव भी कहते हैं। यह यात्रा भक्ति, धर्म और दर्शन की त्रिवेणी है।

महाप्रभु जगन्नाथ आनन्दमय चेतना के प्रतीक हैं। इनकी नजर में राजा-प्रजा, पण्डित-पुजारी, अमीर-गरीब सभी समान हैं। ये आदिदेव हैं। ये साक्षात् परब्रह्म और परमदेव हैं। ये बड़े ठाकुर हैं। ये अद्वैत परमब्रह्म हैं। ये पतितपावन हैं। ये समन्वय और एकता के प्रतीक हैं। ये विश्वमैत्री के प्रतीक हैं। ये आनन्दमय चेतना के प्रतीक हैं। ऋग्वेद के अनुसार ये अपौरुषेय हैं। ये ही मूल हैं, अनादि हैं और ये ही अनन्त हैं–

''अतो यद्दारुः प्लवते, सिन्धुः पारे अपौरुषम्।''

महाप्रभु जगन्नाथ वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, सौर और गाणपत्य हैं। ये सभी के लिए समान रूप से पावन हैं। ये सम्पूर्ण विश्व-सभ्यता के केन्द्र बिन्दु और मानवता के स्वामी हैं।

रथ यात्रा आषाढ़ शुक्ल द्वितीया से आरंभ होकर आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी तक चलती है। इसमें संसार के लाखों श्रद्धालु भक्तगण एवं पर्यटक पुरी आते हैं।

प्रतिवर्ष तीन नए रथ बनाए जाते हैं और श्रीमंदिर के सिंहद्वार के निकट एक पंक्ति में उन्हें सुसज्जित कर रखा जाता है। महाप्रभु के रथ का नाम 'नन्दिघोष', बलभद्र के रथ का नाम 'तालध्वज एवं सुभद्रा जी के रथ का नाम 'देवदलन' है।

कुछ विद्वान इस रथयात्रा को बौद्ध परंपरा का प्रतीक मानते हैं। उनका यह मानना है कि भगवान बुद्ध के जन्मोत्सव के अवसर पर पाटलिपुत्र में

रथयात्रा निकाली थी, जिसे प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ने भी बताया है। चीन में सिकियांग में बुद्ध की रथयात्रा के अवसर पर खोटान के राजा जल सींचते थे और झाड़ू लगाते थे। कुछ लोगों के अनुसार जैन एवं शैवों में भी रथयात्रा की परंपरा का पालन होता आया है। लेकिन इसमें कोई दो मत नहीं है कि रथयात्रा अनादि काल से चली आ रही भारतीय आत्मचेतना का प्रतीक है।

कठोपनिषद् में रथ के विषय में कहा गया है–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।

यहाँ 'रथ' प्रतीकात्मक होने पर भी रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत में युद्ध प्रसंग में 'रथ' यानरूप में व्यवहृत हुआ है। वेद में सूर्य और विष्णु के रथ का भी वर्णन आया है।

महाप्रभु की रथयात्रा के लिए काष्ठ संग्रह वसंत पंचमी के दिन से आरंभ हो जाता है। काठ ओड़िशा के दशपल्ला के जंगल से आता है। अक्षय तृतीया के दिन से रथ निर्माण कार्य प्रारंभ हो जाता है। वंश परंपरा से बढ़ई आदि महाप्रभु का रथ निर्माण करते हैं। पहले इनको जागीर दी गई थी और ये निःशुल्क रथ-निर्माण करते थे, पर अब इस प्रथा के समाप्त हो जाने से इन्हें अब पारिश्रमिक मिलता है।

महाप्रभु के नंदिघोष की ऊँचाई 33 हाथ होती है। इसमें 18 चक्के होते हैं, जो 18 सिद्धियों के प्रतीक माने जाते थे। अब दुर्घटना टालने के लिए सिर्फ 16 चक्के लगाए जाते हैं। इस रथ को लाल और पीले रंग के वस्त्रों से सुसज्जित किया जाता है।

तालध्वज रथ की ऊँचाई 32 हाथ होती है और इसमें 14 चक्के लगे होते हैं। इसे लाल और हरे रंग के वस्त्र से सुसज्जित किया जाता है।

देवदलन रथ की ऊँचाई 31 हाथ होती है और इसमें 12 चक्के लगे होते हैं। इसे लाल और काले रंग के वस्त्र से सुसज्जित किया जाता है।

प्रत्येक रथ में चार-चार घोड़े होते हैं। बलभद्र जी के रथ के घोड़ों के नाम- तीव्र, घोर, दीर्घश्रम और स्वर्णनाभ हैं और इनका रंग काला होता है।

सुभद्रा जी के घोड़ों के नाम– रोचिका, मोचिका, चिता और अपराजिता हैं और इनका रंग भूरा होता है। जगन्नाथ जी के रथ के घोड़ों के नाम शंख, बलाहल, श्वेत और हरिदास हैं और इनका रंग सफेद होता है।

जगन्नाथ के रथ के रक्षक का नाम नृसिंह तथा सारथि का नाम मातली हैं। नंदिघोष रथ के चारों ओर विराजमान देवी–देवताओं के नाम हैं– वराह, गोवर्धन, कृष्ण, गोपीकृष्ण, नृसिंह, राम और श्रीनारायण। तालध्वज रथ में गणेश, कार्तिकेय, सर्वमंगला, प्रलम्ब, मल्लयुद्ध और मृत्युंजय तथा देवदलन रथ में चण्डी, चामुण्डा, उग्रतारा, वनदुर्गा, स्थलदुर्गा, वराही, श्यामाकाली, सर्वमंगला और विमला विराजमान रहती हैं।

रथयात्रा के बाद हर वर्ष पुराने रथ तोड़ दिए जाते हैं। लेकिन सारथि, घोड़े और पार्श्वदेवताओं की मूर्तियों को खोलकर रख लिया जाता है। प्रत्येक रथ के लिए लकड़ी की संख्या भी निश्चित होती है। नंदिघोष के लिए 832, तालध्वज के लिए 763 और देवदलन रथ के लिए 593 संख्यक काष्ठखण्डक प्रयुक्त होते हैं। रथ के हर अंग का नाम निर्धारित है तथा निर्माण विधिपूर्वक होता है, जो काफी जटिल है। रथ को 34 भागों में बाँटा गया है।

रथ को खींचने के लिए नारियल की जटा से निर्मित मोटे–मोटे रस्से व्यवहार में लाए जाते हैं, जो रथ के अंग से बांधे जाते हैं। हर दो चक्कों के बीच एक धुरी होती है, जिनका अलग–अलग नाम है। प्रत्येक चक्के को अक्ष से जोड़ने के लिए छह ईंच व्यास का छेद किया जाता है और अत्यंत सूक्ष्म जटिल कारीगरी कौशल से रथ की संरचना होती है। यह काफी मजबूती से तैयार किया जाता है।

लोगों की भीड़ जब जोश से रथ खींचती है तो गति को काबू में करने के लिए विशालकाय काष्ठखंड के ब्रेक का प्रयोग भी किया जाता है, जो रथ के अगले भाग में रस्सियों के सहारे लटका होता है। अनेक बढ़ई संचालक रथ के अगले दण्ड पर इन रस्सियों को पकड़े बैठे होते हैं।

रथ खींचने के लिए रस्सी दो प्रकार की होती है– सीधी और घुमावदार। प्रत्येक रथ में चार–चार रस्सियाँ लगी होती हैं। इनको विभिन्न चक्कों के

अक्ष से विशेष प्रणाली में लपेट कर गाँठ डालकर बाँधा जाता है।

रथ का निर्माण कार्य पुरी राजमहल के सामने होता है। इस स्थान को रथखळा कहा जाता है। रथ निर्माण के बाद आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा को उन्हें मंदिर के सामने लाया जाता है। रथ मंदिर के सामने उत्तर दिशा की ओर मुँह करके खड़े होते हैं। तीनों रथों को इस प्रकार सूक्ष्म कोण से अगल–बगल खड़ा किया जाता है कि रस्सी खींचने पर वे बड़दाण्ड के बीच में आ सकें। रथ संचालन के लिए झंडियाँ हिलाकर निर्देश दिया जाता है कि रथ को किस कोण पर खींचें।

रथयात्रा को घोष यात्रा और गुण्डिचा यात्रा भी कहा जाता है। पौराणिक कथा के अनुसार राजा इन्द्रद्युम्न की रानी का नाम गुण्डिचा था। जब विश्वकर्मा श्रीजगन्नाथ विग्रह का निर्माण कर रहे थे, तो रानी के कहने पर राजा के बीच में द्वार खोल दिया था। प्रतिमा निर्माण के पूर्व विश्वकर्मा की शर्त थी कि 21 दिन तक बंद कक्ष के अंदर वे देव प्रतिमाओं का निर्माण करेंगे। जब कक्ष से आवाज आनी बंद हो गई तो समय से पूर्व द्वार खोले जाने पर विश्वकर्मा अंतर्धान हो गए और तीनों देव–प्रतिमाएँ अधूरी रह गईं। दूसरी पौराणिक घटना के अनुसार शबर–प्रधान जार की पत्नी का नाम गुण्डिचा था, जो जगन्नाथ की भक्ति एवं श्रद्धा के साथ पूजा किया करती थी। चूँकि जगन्नाथ महाप्रभु आडम्बरपूर्ण विधिविधान से पूजन की अपेक्षा भक्तिभावना और आंतरिक प्रेम को अधिक पसंद करते हैं, इसलिए वे गुण्डिचा रूपी आम जनता को दर्शन देने हर वर्ष रथयात्रा करते हैं।

पद्मपुराण के अनुसार आषाढ़ महीने के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को सभी कार्यों में सिद्धिदाता नक्षत्रराज पुष्य के अवस्थान के समय यह पावन रथयात्रा संपन्न होती है। वापसी यात्रा दशमी तिथि को होती है। रथयात्रा के इस काल में जो रीति–नीतियाँ संपन्न होती हैं, उनमें प्रमुख हैं– हेरा पंचमी। पंचमी तिथि को लक्ष्मी देवी श्री जगन्नाथ के दर्शन करने के लिए एक शोभायात्रा में गुण्डिचा मंदिर जाती हैं, लेकिन जगन्नाथ के

सेवक उनको आते देखकर द्वार बंद कर देते हैं। इससे क्षुब्ध होकर लक्ष्मी देवी जगन्नाथ जी के रथ का कुछ अंश तोड़ देती हैं। उनके लौटने के वक्त हेरा गोहरी साही में उनको भोग लगाया जाता है।

रथयात्रा के दो सप्ताह पूर्व ज्येष्ठ पूर्णिमा को स्नान पूर्णिमा होती है। काष्ठ प्रतिमाओं को पहंडी विजय कराते हुए स्नान मंडप में लाया जाता है, जो 30 फुट ऊँचा है। यहाँ अतिरिक्त 16 प्रकार के सेवकों को काम में लाया जाता है। विग्रहों पर 108 घड़ों का जल उड़ेलने पर उनका रंग छूट जाता है। अब ये देव-गण बीमार पड़ जाते हैं। अत: फिर से स्वस्थ करने के लिए देव-विग्रहों को 15 दिन के लिए अणसर गृह में रखा जाता है। भक्तगण उस समय उनके दर्शन नहीं कर सकते। कहते हैं कि 15 दिन तक भगवान बीमार हो जाते हैं। इस वक्त उन्हें विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों का भोग लगाया जाता है। इस प्रसाद को पाने के लिए अनेक चिकित्साशास्त्री दूर-दूर से आते हैं।

रथयात्रा के दिन देव-प्रतिमाओं को रथ में विराजमान कराने के लिए विशेष परंपरा में झुलाकर गाजे-बाजे के साथ लाया जाता है, जिसे 'पहंडि विजय' कहा जाता है। यह दृश्य अत्यन्त मनोरम होता है ऐसा लगता है कि जैसे देव-प्रतिमाएँ स्वयं चलकर आ रही हों। यह संस्कृत की 'पदहुंड' कथा से आया है, जिसका अर्थ है कदम रखते हुए चलना। इसी प्रकार रथ में चढ़ाते वक्त प्रतिमाओं को झुलाकर गाजे-बाजे के साथ ऊपर उठाया जाता है। तीनों देव-प्रतिमाओं को रथ में विराजमान कराने से पूर्व सबसे पहले 'सुदर्शन' को सुभद्रा जी के रथ पर विराजमान कराया जाता है। इन्हें चतुर्धा मूर्ति कहा गया है:

सुदर्शनां पुरसृत्य बलभद्रं ततः परम्।
सुभद्रा च चतुष्नीत्वा जगदीशं सुरेश्वरम्॥

रथयात्रा के रीति-नीति के संचालन में मंदिर प्रशासन को निर्धारित समय से काफी अधिक समय लग जाता है क्योंकि प्रशासन को लाखों भक्तों को दर्शन हेतु सुविधा के प्रति ध्यान देना पड़ता है। राज्य सरकार,

पुलिस प्रशासन, जनस्वास्थ्य विभाग, संचार विभाग आदि अनेकानेक संस्थाओं के सहयोग से ही यह महान् आयोजन संपन्न हो पाता है।

चतुर्धा मूर्तियों के रथ पर विराजमान होने के बाद पुरी के गजपति महाराजा पारंपरिक रीति से पालकी में बैठकर पधारते हैं और रथ पर चढ़कर एक सोने की मूठवाली झाड़ू से रथ की सफाई करते हैं और चंदन-चोआ मिश्रित जल छिड़कते हैं। इसे 'छेरा पहँरा' कहा जाता है। इस नीति से स्पष्ट होता है कि राजा जगन्नाथ जी के अन्यतम और प्रथम सेवक हैं।

श्रीमंदिर सिंहद्वार से गुण्डिचा मंदिर लगभग 3 किलोमीटर दूर है। लेकिन रथ के वहाँ तक पहुँचने में छह घण्टे से लेकर 24 घण्टे तक का समय लग जाता है।

स्नानयात्रा से लेकर मंदिर में लौटने तक भगवान जगन्नाथ के विभिन्न सेवा-पूजा का दायित्व शबर वंशीय पंडों के हाथ में होता है, जिन्हें 'दइतापति' कहा जाता है। इसी अवधि में इन पंडों को जो भी कमाई हो जाती है, उसी से ये पूरे वर्षभर अपना जीवन यापन करते हैं।

नवीं शताब्दी में लिखित मुरारी मिश्र के प्रसिद्ध नाटक से पता चलता है कि समुद्र किनारे कभी रथयात्रा होती थी, लेकिन किसी स्थान विशेष का उल्लेख नहीं मिलता। रथयात्रा के धर्म-सम्मेलन में योग देने के लिए जाने का भी उल्लेख मिलता है। अत: स्पष्ट है कि इस रथयात्रा की परम्परा सैकड़ों वर्षों से चलती आ रही है।

गुण्डिचा मंदिर में भगवान जगन्नाथ 9 दिन रहते हैं। दशमी के दिन वापसी यात्रा होती है, जिसे बाहुड़ा यात्रा कहा जाता है।

अनेक विदेशी लेखकों ने रथयात्रा महोत्सव की रीतियों का विकृत वर्णन किया है जो वास्तविकता से कोसों दूर है। इनमें एक वर्णन है रथ के चक्के के नीचे कई लोगों के बलिदान देने की बात। इसके पीछे सच्चाई यह है कि हिन्दू धर्म में मोक्ष की अभिलाषा सबसे बड़ी होती है। कुछ लोगों की धारणा है कि रथ के चक्के के नीचे प्राण उत्सर्ग करने से मोक्ष मिलता है। इसलिए कुछ लोग स्वयं के बलिदान का प्रयास कभी

करते होंगे। इतिहास बतलाता है कि एक बार रथयात्रा के अवसर पर सनातन गोस्वामी वृन्दावन से पुरी आए थे चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करने। उन्होंने रथ के चक्के के नीचे आकर अपना जीवन उत्सर्ग करना चाहा था, लेकिन चैतन्य देव ने समझाकर रोक दिया था :

''सनातन देहत्याग कृष्णा ना पाइयाँ
कोटिदेह क्षणको तबे छाड़िबे पारियाँ
देहत्यागे कृष्ण न पा पाईए भजने
कृष्ण प्राप्ति उपाय नाति भक्ति बिने।''

अर्थात् आत्मबलि द्वारा कृष्ण की प्राप्ति नहीं होती। यदि ऐसा होता तो मैं कई बार कर चुका होता। उनके भजन एवं भक्ति से ही उनकी प्राप्ति होती है।

वास्तव में रथ के नीचे आकर प्राणबलि की घटना की बातें गलत हैं। हाँ, भारी भीड़ के बीच रथ खींचते वक्त पैर फिसलने से दुर्घटना होने की बात सही है। लेकिन इतने विशाल आयोजन के लिए पुलिस, अस्पताल एवं स्वयंसेवक आदि की सुव्यवस्था की जाती है, जो हर घटना के अवसर पर तत्काल सेवा प्रदान के लिए प्रस्तुत रहते हैं। रथ के बिल्कुल निकट आम जनता के प्रवेश को वर्जित करने के लिए पुलिस बल एक रस्सी से घेरा बनाकर रहता है।

रथयात्रा के अवसर पर विशेष व्यवस्था के लिए ओड़िशा सरकार द्वारा 1987 में विशेष कानून बना। इनमें रथ निर्माण की सूचना, प्रशासनिक व्यवस्था, जनस्वास्थ्य व्यवस्था, बिजली के प्रकाश की व्यवस्था, यातायात व्यवस्था, यात्रियों की व्यवस्था आदि के लिए उच्चपदस्थ अधिकारियों को तैनात किया जाता है। जिला प्रशासन, पुरी नगरपालिका आदि मिलकर रथ-यात्रा के काफी पहले एक मास्टर प्लॉन प्रस्तुत करते हैं। 1989 और 1993 में दुर्घटना और अव्यवस्था को रोकने के लिए ओड़िशा सरकार की ओर से एक 8 सदस्यीय समिति भी बनाई गई थी, जिसके निर्णय के अनुसार जगन्नाथ और बलभद्र के रथ पर 80 तथा

जो दूसरों की मुसीबत में काम आता है, उस पर कभी मुसीबत नहीं आती।

सुभद्रा के रथ पर 60 से अधिक लोग नहीं बैठ सकते। इस समिति ने रथ की रस्सी को और छोटा करने का भी प्रस्ताव दिया था, ताकि कम लोग रथ को खींचने के लिए जोर लगा सकें और रथ नियंत्रण में रहे।

जगन्नाथ जी के रथ का वजन लगभग 65 टन होता है और इसे लगभग 4000 लोग मिलकर खींचते हैं। उनका सम्मिलित जोश और भक्तिभावना कभी-कभी व्यवस्था को अनियंत्रित कर देती है। इसलिए भीड़ के मध्य एक मजिस्ट्रेट रहकर नियंत्रण करने की सलाह दी गई।

जगन्नाथ संस्कृति एकता, सर्वधर्म-समन्वय, समानता और सरलता का सम्मिलित रूप है। ओड़िशी संस्कृति का मूल तत्व यही जगन्नाथ धर्म है, जो मौलिक रूप से आदिम आदिवासियों द्वारा सृजित है।

रथयात्रा महोत्सव एक ऐसा अनुपम पर्व है, जब विश्व भर के समस्त जनमानस अपनी जाति-पाँति, भाषा-धर्म भेद भूलकर भगवान जगन्नाथ के दर्शन कर पाते हैं और स्वयं को धन्य महसूस करते हैं। वैसे तो जगन्नाथ मंदिर में किसी प्रकार की कोई छूआछूत की भावना लेशमात्र भी नहीं होती। ब्राह्मण भी चण्डाल के हाथ से प्रसाद लेकर खाता है। सभी जाति के हिन्दू मंदिर में प्रवेश कर भगवान जगन्नाथ की मूर्ति के दर्शन कर सकते हैं। लेकिन विदेशी एवं अन्य धर्म के भक्तों को दर्शन का अवसर देने के लिए भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा ही अनुपम अवसर प्रदान करती है।

रथयात्रा महोत्सव की समस्त भारतीय जनमानस उत्कण्ठा के साथ प्रतीक्षा करता है। लाखों की संख्या में भक्त एवं पर्यटक पुरी आकर जिस आध्यात्मिक आनन्द की उपलब्धि करते हैं, वह अवर्णनीय है।

वर्ष 1992 से रथयात्रा महोत्सव का दूरदर्शन से सीधा प्रसारण आरंभ हो गया है, जिससे विश्वभर के करोड़ों लोगों को घर बैठे प्रतिवर्ष अपने नेत्र धन्य करने का सुअवसर मिल जाता है।

सेवा या सहायता करने वाले हाथ, स्तुति करने वाले होठों की अपेक्षा अधिक पवित्र हैं।

रथ-निर्माण

रथ निर्माण की हजारों वर्षों की अपनी गौरवशाली परम्परा रही है। वैदिक साहित्य में रथों का उल्लेख मिलता है। रथ हमारा हमेशा से प्रमुख वाहन रहा है। दो पहियों वाले सबसे छोटे रथ से लेकर सौ पहियों वाले विशालकाय रथों की चर्चा वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। तैत्तिरीय संहिता में रंग-बिरंगे वस्त्रों, पताकाओं, रत्नों और फूलों आदि से रथ को सजाने का उल्लेख मिलता है।

जहाँ तक, रथों के निर्माण की बात है, वैदिक युग एवं रामायण व महाभारत युग के साहित्य में इसका विवरण मिलता है और उनके निर्माण में वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक विचारों का ध्यान रखा जाता था।

आज भी जगन्नाथ पुरी में आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को प्रतिवर्ष रथयात्रा निकलती है, जिसमें तीन रथ निकलते हैं जिन्हें तरह-तरह से सुसज्जित किया जाता है और जिन्हें श्रद्धालु भक्त समुदाय खींचता है। रथों की आकृति प्राचीन अवश्य होती है लेकिन निर्माण पूरी तरह से वैज्ञानिक होता है और इनका रथों पर लगाए जाने वाले रंग-बिरंगे तोरण-पताका आदि पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक होते हैं।

रथ-निर्माण का कार्य चंदन यात्रा, जो बैशाख शुक्ल तृतीय (अक्षय तृतीय) से शुरू होता है और अगले लगभग 60 दिनों में पूरा किया जाता है। दूसरी तरफ अक्षय तृतीया से किसान अपने खेतों की बोआई शुरू करते हैं।

रथ-निर्माण की परम्परा 5वीं शताब्दी से शुरू हुई थी। रथ के निर्माण में 'साल' लकड़ी का इस्तेमाल किया जाता है। बहुत पहले 'साल' की लकड़ी दशपल्ला के जंगल से आती थी। यह परम्परा आज भी जीवित है।

रथ, वंशानुक्रम से निश्चित बढ़ई-गण द्वारा ही बनाए जाते हैं। रथों का निर्माण शास्त्र-सम्मत विधि से होता है। विशेषज्ञों का मानना है कि रथ पूरी तरह से वैज्ञानिक आधार पर निर्मित होता है। हर वर्ष नए रथ बनाए जाते हैं और पुराने रथ तोड़ दिए जाते हैं।

रथ का वजन लगभग 65 टन होता है। इसे खींचने के लिए 3-3 ईंच व्यास की मोटाई के दो सौ फुट लम्बे चार-चार रस्से चक्कों की धुरी से विशेष शैली में बंधे होते हैं।

तीन रथों के विवरण- बलभद्र जी के रथ का नाम 'तालध्वज' है। ताल वनों के देवताओं ने इसे प्रदान किया था। इस रथ की ऊँचाई 44 फुट होती है। यह 763 अलग-अलग काष्ठ खण्डों से निर्मित होता है। इसमें 14 चक्के होते हैं।

सुभद्रा जी के रथ का नाम देवदलन है। इसे देवदलन देवताओं द्वारा प्रदान किया गया था। इस रथ की ऊँचाई 43 फुट होती है। इसमें 593 अगल-अलग काष्ठखण्ड लगते हैं। इसमें 12 चक्के लगाए जाते हैं।

जगन्नाथजी के रथ नाम नन्दिघोष है। इस रथ को इन्द्र ने प्रदान किया था। यह 45 फुट ऊँचा होता है। इसमें 832 अलग-अलग काष्ठ खण्ड का इस्तेमाल होता है। इसमें 16 चक्के लगाए जाते हैं।

1. जगन्नाथजी का रथ नन्दि घोष- जगन्नाथजी के रथ नन्दिघोष को चक्रध्वज, गरुड़ ध्वज और कपिध्वज के नाम से भी जाना जाता है। इस रथ की ऊँचाई 45 फीट (13.5 मीटर) होती है। इसमें 16 चक्के लगे होते हैं। रथ के परिधान का रंग पीला होता है इसके सारथी होते हैं दारुक। इस पर लगे हुए लाल पताका का नाम है- त्रिलोक्यमोहिनी। इसमें लगे चार घोड़ों के नाम हैं- शंख, बलाहक, श्वेत और हरिदाश्व। इसमें लगे रस्से का नाम है- शंखचूड़। इसके रक्षक हैं- नृसिंह। रथ की लम्बाई-चौड़ाई है- 34 फीट 6 इंच, 34 फीट 6 इंच। इस रथ के द्वारपाल के रूप में इन्द्र और ब्रह्मा होते हैं। इसके पार्श्व देवता हैं- वराह, गोवर्द्धन, गोपीकृष्ण, नृसिंह, राम, नारायण, त्रिविक्रम, हनुमान और रुद्र। इसमें जुड़े घोड़ों का रंग सफेद है।

2. बलभद्र जी का रथ तालध्वज– बलभद्रजी के रथ तालध्वज को बहलध्वज भी कहते हैं। इस रथ की ऊँचाई 44 फीट (13.2 मीटर) होती है। इसमें 14 चक्के लगे होते हैं। रथ के परिधान का रंग कुछ नीला हरा और लाल होता है। इसके सारथी 'मातली' होते हैं। इस रथ पर लगे हुए पताके का नाम उन्नानी है। इसमें लगे चार घोड़ों के नाम हैं– तीव्र, घोर, दीर्घाश्रम और स्वर्णनाभ। इनका रंग काला होता है। इसमें लगे रस्से का नाम बासुकी है। इसके रक्षक हैं वासुदेव। रथ की लंबाई-चौड़ाई 33 फीट, 33 फीट होती है। इसके पार्श्व देवी-देवता हैं– गणेश, कार्तिकेय, सर्वमंगला, प्रलम्भरी, हलयुद्ध, मृत्युंजय, नटम्बर, मुक्तेश्वर और सहदेव।

3. सुभद्रा जी का रथ देवदलन – सुभद्रा जी के देवदलन रथ को दर्पदलन और पद्मध्वज के भी नाम से जाना जाता है। इस रथ की ऊँचाई 43 फीट (12.5 मीटर) होती है। रथ की लंबाई-चौड़ाई 31 फीट 6 इंच 31 फीट 6 इंच होती है। उस पर लगे परिधान का रंग काला-लाल होता है। इसमें 12 चक्के होते हैं। रथ के सारथी 'अर्जुन' होते हैं। रथ के रक्षक जयदुर्गा होती हैं। रथ पर लगे पताके का नाम नदम्बिका है। इसमें लगे घोड़ों के नाम हैं– रोचिरा, मोचिरा, जीत, अपराजिता। घोड़ों का रंग भूरा होता है। इसमें लगे रस्से का नाम है– स्वर्णचूड़ तथा इसके पार्श्व देवियाँ हैं– चण्डी, चामुण्डी, उग्रतारा, वनदुर्गा, शुलीदुर्गा, वरही, श्यामाकाली, मंगला और विमला।

उपर्युक्त रथों पर लगाए गए रंगों का अपना सांकेतिक और मनोवैज्ञानिक महत्व होता है। ये रंग सुन्दरता और कल्याण के संदेशवाहक होते हैं। दैनिक जीवन में ये रंग नवस्फूर्ति प्रदान करते हैं। पीला रंग ज्ञान, विद्या और विवेक का प्रतीक होता है। लाल रंग धार्मिकता, धन, समृद्धि और शुभ-लाभ का प्रतीक होता है। काला रंग बल और पौरुष का प्रतीक होता है और सफेद रंग पवित्रता, शुद्धता, विद्या और शांति का प्रतीक होता है।

इस प्रकार शताब्दियों से चली आ रही रथ-निर्माण परम्परा अपने आप में आदर्श और उत्तम परम्परा है और जिसमें वैज्ञानिकता और मनोवैज्ञानिकता का पूरा-पूरा निर्वाह किया जाता है।

महाप्रभु की प्रसिद्ध अन्य यात्राएँ एवं पर्वोत्सव

श्रीक्षेत्र में साल भर में तेरह यात्राएँ होती हैं। ये हैं– (1) चन्दन यात्रा, (2) नीलाद्रि महोदय, (3) स्नान यात्रा, (4) रथयात्रा, (5) बाहुड़ा (वापसी) यात्रा, (6) हरिशयनी एकादशी, (7) दक्षिणायन, (8) पार्श्व परिवर्तन, (9) हरि उत्थापन (देवोत्थापन एकादशी), (10) प्रावरण षष्ठी (ओढ़न षष्ठी), (11) मकर संक्रान्ति, (12) दोल यात्रा (होली), (13) दयणा चोरी (दमनक चतुर्दशी)।

(1) चन्दन यात्रा– वैशाख शुक्ल तृतीया से शुरू होकर 21 दिन तक यह यात्रा होती है। इसके प्रारम्भ की तिथि को अक्षय तृतीया भी कहा जाता है। रामकृष्ण, मदनमोहन, लक्ष्मी, सरस्वती, बलराम और पंच पाण्डवों को नरेन्द्र सरोवर तक लाया जाता है। इसके बाद इन देव-देवियों को चाप (नाव) में बैठाकर नरेन्द्र सरोवर के एक ओर से दूसरे छोर तक घुमाया जाता है। बाद में देव-देवियों को सरोवर के बीच अवस्थित चन्दन घर में लाकर वहाँ सुवासित जल में कुछ समय तक रखा जाता है।

(2) नीलाद्रि महोदय– वैशाख शुक्ल अष्टमी तिथि के मध्याह्न में यह उत्सव मनाया जाता है। यह एक गुप्त यात्रा है। इस दिन पुरुषोत्तम जी की प्रथम प्रतिष्ठा हुई थी और नीलांचल स्थित अन्तर्वेदी पर माधव विग्रह की स्थापना की गई थी।

(3) स्नान यात्रा (देव स्नान पूर्णिमा)– ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन श्री मन्दिर में महाप्रभु जगन्नाथ जी का स्नानोत्सव मनाया जाता है। स्नान-मण्डप पर तीन मूर्तियों को लाया जाता है और स्नान के बाद महाप्रभु का गजवेष होता है। इसे देखने के लिए हजारों श्रद्धालु भक्त यहाँ आते हैं।

(4) बाहुड़ा (वापसी) यात्रा– श्री गुण्डिचा मन्दिर में सात रोज रहने के बाद तीनों मूर्तियाँ फिर रथारूढ़ होकर श्री मन्दिर वापस आती हैं। आषाढ़ शुक्ल एकादशी तिथि को श्रीमन्दिर में पहुँचती हैं। इस यात्रा को बाहुड़ा (वापसी) यात्रा कहा जाता है।

(5) **हरिशयनी एकादशी–** आषाढ़ शुक्ल एकादशी को हरिशयन एकादशी कहते हैं। उस दिन वासुदेव, भुवनेश्वरी और नारायण तीनों को बलभद्र, सुभद्रा और जगन्नाथ जी के रथों पर बिठाकर पूजा अर्चना की जाती है। इसके पश्चात् इन्हें शयनकक्ष में लाया जाता है।

(6) **दक्षिणायन–** यह उत्सव कर्क संक्रान्ति में होता है। इस दिन दक्षिणायनगामी सूर्य के रूप में श्री जगन्नाथ जी की पूजा की जाती है।

(7) **पार्श्व परिवर्तन–** प्रति वर्ष भाद्रपद शुक्ल एकादशी तिथि को महाप्रभु जगन्नाथ जी का पार्श्व परिवर्तन उत्सव मनाया जाता है।

(8) **हरि उत्थापन (देवोत्थापन एकादशी)–** कार्तिक शुक्ल एकादशी को हरि उत्थान एकादशी मनाई जाती है। इस दिन चतुर्मास्य के बाद श्री विग्रह शयनकक्ष से जाग्रत होते हैं।

(9) **प्रावरण षष्ठी (ओढ़न षष्ठी)–** मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी को प्रावरण षष्ठी कहते हैं। इस दिन वसन्त पञ्चमी तिथि तक श्री जगन्नाथादि विग्रहों को विविध वस्त्रों से सज्जित किया जाता है।

(10) **मकर संक्रान्ति–** माघ महीने के पहले दिन ही मकर संक्रांति का उत्सव पालन किया जाता है। पण्डे (पुजारी) लोग उस दिन श्रीमन्दिर में पंचोपचार से भोग (प्रसाद) की तैयारी करते हैं। उस दिन श्री मन्दिर में बड़ी धूम-धाम से पूजा-अर्चना होती है।

(11) **डोल यात्रा (होली)–** फाल्गुन मास की शुक्ल दशमी से पूर्णिमा तक दोलयात्रा का उत्सव मनाया जाता है। उस दिन श्री जगन्नाथ जी की प्रतिनिधि मूर्तियों- दोल गोविन्द और लक्ष्मी देवी को दोल वेदी पर बिठा कर पूजा-अर्चना की जाती है। इस अवसर पर श्री मन्दिर में बड़ी भीड़ लगती है।

(12) **दयणा चोरी (दमनक चतुर्दशी)–** हर साल चैत्र शुक्ल चतुर्दशी के दिन श्री मंदिर में एक उत्सव मनाया जाता है। उस उत्सव को विष्णु दमनक चतुर्दशी कहा जाता है। कहा गया है कि इस दिन श्री जगन्नाथ जी ने देवराज इन्द्र के नन्दन वन से दयणापत्र तोड़कर अपनी भुजाओं में धारण किया था। इस स्मृति के आधार पर यह उत्सव मनाया जाता है।

इस प्रकार की मन्दिर में नीलाद्रिमहोदय उत्सव के साथ और अन्य उपर्युक्त यात्राएँ मनाई जाती हैं।

अन्य उत्सव– (1) **नृसिंह जन्म–** यह उत्सव वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को मनाया जाता है।

(2) **शीतल षष्ठी–** ज्येष्ठ महीने की शुक्ल षष्ठी तिथि में यह उत्सव होता है।

(3) **रुक्मिणी हरण एकादशी–** हर साल ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी तिथि में यह उत्सव मनाया जाता हो।

(4) **नेत्रोत्सव–** यह उत्सव आषाढ़ अमावस्या के दिन होता है।

(5) **हेरा पंचमी–** आषाढ़ शुक्ल षष्ठी की रात को हेरा पंचमी उत्सव होता है।

(6) **चिता (तिलक) लागि अमावस्या–** सावन महीने की अमावस्या को यह उत्सव मनाया जाता है।

(7) **झूलन यात्रा (झूला)–** श्रावण शुक्ल नवमी से पूर्णिमा तक सात दिनों तक यह उत्सव मनाया जाता है।

(8) **गह्मा पूर्णिमा–** सावन पूर्णिमा (रक्षा बन्धन) के दिन यह उत्सव होता है। यह बलभद्रदेव जी का जन्मोत्सव है।

(9) **जन्माष्टमी–** भाद्रव महीने की कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को जन्माष्टमी उत्सव मनाया जाता हो इस अवसर पर श्रीकृष्ण भगवान के जन्म का पर्व मनाया जाता है।

(10) **गणेश चतुर्थी–** भाद्र शुक्ल चतुर्थी के दिन श्री मन्दिर में गणेश जन्म के उपलक्ष्य में यह उत्सव मनाया जाता है।

(11) **सप्तपुरी अमावस्या–** भाद्रपद अमावस्या के दिन यह उत्सव मनाया जाता है।

(12) **वामन जन्म–** भाद्रपद शुक्ल एकादशी के दिन वामन जन्म का उत्सव मनाया जाता है।

(13) **राधाष्टमी–** भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को यह उत्सव मनाया जाता है।

(14) **अनन्त चतुर्दशी–** भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी में यह उत्सव अनुष्ठित होता है।

(15) **दुर्गा पूजा–** श्रीमन्दिर में आश्विन कृष्ण अष्टमी से शुक्ल दशमी तक दुर्गापूजा उत्सव मनाया जाता है।

(16) **कुमार पूर्णिमा–** यह उपयात्रा आश्विन पूर्णिमा के दिन मनाई जाती है। इस दिन कुमारोत्सव और द्यूतक्रीड़ादि होते हैं।

(17) **प्रथमाष्टमी–** यह पर्व मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी तिथि को मनाया जाता है।

(18) **दीपावली–** श्रीमन्दिर में कार्तिक अमावस्या तिथि को मनाई जाती है।

(19) **पुष्याभिषेक –** पौष पूर्णिमा के दिन यह उत्सव मनाया जाता है।

(20) **वसन्त पञ्चमी–** माघ शुक्ल पञ्चमी तिथि को वसंत पञ्चमी का उत्सव मनाया जाता है।

(21) **शिव चतुर्दशी या महाशिव रात्रि–** फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी तिथि को इस उत्सव का पालन किया जाता है। पुरी के श्री लोकनाथ जी के पास उस दिन एक बड़ा मेला भी लगता है।

(22) **चाचेरी–** फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी तिथि को चाचेरी लीला का उत्सव मनाया जाता है।

(23) **श्री राम जन्मोत्सव–** श्री मन्दिर में रामचन्द्र जी का जन्मोत्सव हर चैत्रशुक्ल नवमी को मनाया जाता है।

(24) **श्री राम लीला–** यह उत्सव श्री रामजन्म यानी चैत्र शुक्ल नवमी से शुरू होकर रावण वध तक चलता है।

(25) **महाविषुव संक्रान्ति–** वैशाख संक्रान्ति को महाविषुव संक्रान्ति या पणा संक्रान्ति कहते हैं। उस दिन वीर हनुमान जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। यह दिन ओड़िशा में नूतन पंजिका (पंचांग) के प्रचलन का प्रथम दिन है।

इस प्रकार श्री मदिर में सालभर विविध यात्राएँ तथा उपयात्राएँ अनुष्ठित होती हैं।

विशिष्ट महत्त्व के स्थल एवं मंदिर

(1) **श्री गुण्डीचा मन्दिर –** श्री मन्दिर से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर उत्तर दिशा में श्री गुण्डीचा मन्दिर है। जगन्नाथ महाप्रभु जी रथयात्रा से बाहुड़ा यात्रा (वापसी यात्रा) यानी आषाढ़ शुक्ल द्वितीया तिथि से दशमी तिथि तक श्री मन्दिर छोड़कर यहाँ आकर रहते हैं। श्रीमन्दिर की नीति के ही अनुसार यहाँ सब कामकाज होते हैं। राजा इन्द्रद्युम्न की रानी गुण्डीचा के नामानुसार इस मन्दिर का नाम गुण्डीचा मन्दिर रखा गया है। गुण्डीचा मन्दिर की लम्बाई 430 फुट और चौड़ाई 320 फुट है।

(2) **सिद्ध महावीर जी मन्दिर–** गुण्डीचा मंदिर के पश्चिम की तरफ एक किलोमीटर पर सिद्ध महावीर जी का मन्दिर है। इस मन्दिर में अर्चित होने वाले अनुमान जी की बड़ी प्रसिद्धि है। उनकी पूजा और अर्चना से मनोकामना पूरी होने के कारण उनको सिद्ध महावीर के नाम से पुकारा जाता है।

(3) **श्री नृसिंह जी मन्दिर–** यह मन्दिर बड़ा प्राचीन है। कहा गया है कि राजा इन्द्रद्युम्न ने यहाँ नृसिंह भगवान को उपासना से संतुष्ट कर जगन्नाथ जी की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। यह मन्दिर के पश्चिम की ओर अवस्थित है।

(4) **श्री लोकनाथ जी मन्दिर–** यह पुरी का सबसे प्राचीन मन्दिर है, जिसमें शंकर भगवान श्री लोकनाथ जी के नाम से पूजित होते हैं। श्री मन्दिर की दक्षिण-पश्चिम दिशा में यह मन्दिर

अवस्थित है। हर साल शिव चतुर्दशी (शिवरात्रि) को यहाँ एक बड़ा मेला लगता है। भक्तों को आशीर्वाद देकर उनकी मनोकामना पूरा करने में इनकी बड़ी प्रसिद्धि है। कहा जाता है कि दशरथ सुत रामचन्द्र जी ने लंका जाते समय यहाँ शिवजी की पूजा की थी। चन्दन यात्रा में श्री जगन्नाथ जी के साथ ये भाग लेते हैं। वे श्री जगन्नाथ जी के भंडार-रक्षक हैं। इस मन्दिर के पास ''पार्वती सागर'' नाम का एक तालाब है।

(5) **सोनार गौरांग मन्दिर–** यह मन्दिर चक्रतीर्थ के पास ही है। यह वैष्णवों का श्रेष्ठ दर्शनीय स्थान है। इस मन्दिर में अष्टधातु निर्मित गौर किशोर और गौर गोपाल नामक दो विग्रह पूजित हो रहे हैं।

(6) **श्री यमेश्वर जी मन्दिर–** श्री मन्दिर से दक्षिण की ओर दो किलोमीटर की दूरी पर गौड़वाड़ साहि में यह मन्दिर है। कहा जाता है कि यमराज के प्रभाव से श्रीक्षेत्र की रक्षा इस महादेव जी ने की थी। इसलिए इनका नाम यमेश्वर हुआ है। पुरी के लोकनाथ, मार्कण्डेय, नीलकंठ, कपोलमोचन आदि शिवलिंगों की भाँति इनकी प्रसिद्धि है।

(7) **देवी दक्षिण काली मन्दिर–** श्री मन्दिर से स्वर्गद्वार के रास्ते पर जाते समय बाईं ओर दक्षिण काली का मन्दिर है। इनकी महिमा अलौकिक है।

(8) **देवी श्याम काली मन्दिर–** सिद्ध वकुल मठ से वापस आते समय दायीं ओर एक छोटी गली है। इस गली में थोड़ी दूर जाने पर श्यामाकाली जी का मन्दिर पड़ता है। पहले ये पुरी महाराज के महल में पूजित होती थीं। इनकी बड़ी प्रसिद्धि है। चण्डी-साधकों के लिए यह एक साधना पीठ है।

(9) **दरिया महावीर जी मन्दिर–** यह मदिर बालूकाराशि पर अवस्थित है। इनकी बड़ी प्रसिद्धि है। महाविषुव संक्रान्ति के दिन यहाँ विशेष नीति और अनुष्ठान हुआ करते हैं।

(10) **अष्टशम्भु मन्दिर–** श्यामाकाली मन्दिर के पास अष्टशम्भु मन्दिर है। इस मन्दिर में विचित्र शोभा धारण करने वाले आठ शिवलिंग

हैं। कहा गया है कि एक बार पुरी के गजपति महाराज कुष्ठ रोग से पीड़ित हुए। पण्डितों की सलाह मान कर उन्होंने इन आठ शिवलिंगों की स्थापना की और उनकी पूजा-पाठ करने से व्याधि से मुक्त हुए।

(11) **मौसी माँ मन्दिर–** श्री मन्दिर से गुण्डीचा मन्दिर जाने के बड़दाण्ड पर यह मन्दिर है। यह श्रीजगन्नाथ महाप्रभु की मौसी का घर है।

(12) **श्री मार्कण्डेश्वर मन्दिर–** पुरी शहर की मार्कण्डेश्वर साहि में यह मन्दिर है।

(13) **कपाल मोचन मन्दिर–** श्रीमन्दिर के दक्षिण-पश्चिम कोने में कपालमोचन महादेव जी का मन्दिर है।

(14) **चक्रतीर्थ–** यह समुद्र के किनारे बालूकाराशि क्षेत्र में है। प्राचीन काल में यहाँ भार्गवी नदी की एक शाखा समुद्र में शामिल हुई थी। कोई-कोई इसे बांकी मुहाना भी कहते हैं। पुरी के गजपति इन्द्रद्युम्न जीन को यहाँ पर पवित्र दारू मिला था। इन दारुओं से जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा जी की मूर्तियाँ बनीं थीं।

(15) **तोटा गोपीनाथ–** पुरी शहर के गौड़वाड़ साहि में तोटा गोपीनाथ जी का मन्दिर है। यह बहुत सुन्दर और दर्शनीय स्थल है। केशरी वंश के नरेश प्रतापी केशरी जी ने इस मन्दिर का निर्माण किया था।

(16) **श्वेतगंगा–** यह एक बड़ा सरोवर है। इसकी लम्बाई 254 फुट और चौड़ाई 184 फुट है। यहाँ श्वेत माधव और मत्स्य माधव नाम के दो विग्रहों की पूजा दो मन्दिरों में होती है। यह एक प्रसिद्ध तीर्थ है।

(17) **इन्द्रद्युम्न सरोवर–** यह एक बड़ा तालाब है। इसकी लम्बाई 485 फुट और चौड़ाई 396 फुट है। इस तालाब के पास नीलकण्ठेश्वर महादेव जी का मन्दिर है। कहा गया है– राजा

इन्द्रद्युम्न ने एक बार अश्वमेध यज्ञ किया था। उन्होंने इस यज्ञ में अनेक गायों का दान दिया था। इन गायों के खुरों से यहाँ एक बहुत बड़ा गड्ढा बन गया। गोमूत्र और दान जल से यह गड्ढा भर गया और बाद में यह एक बड़ा तालाब बन गया था। वही तालाब आजकल इन्द्रद्युम्न सरोवर के नाम से प्रसिद्ध है।

(18) **मार्कण्डेय पुष्करिणी–** यह तालाब बहुत बड़ा है। मार्कण्डेय मुनि यहाँ तपस्या करके शंकर भगवान की कृपा से मृत्युंजयी बने थे। इसलिए इनके नामानुसार इस तालाब का नामकरण हुआ है। इस तालाब के किनारे मार्कण्डेश्वर मन्दिर, मृत्युंजय लिंग आदि हैं।

(19) **नरेन्द्र पुष्करिणी–** जगन्नाथ वल्लभ मठ से एक सँकरे रास्ते पर जाकर नरेन्द्र तालाब के पास पहुँचा जाता है। नरेन्द्र तालाब की लम्बाई 873 फुट और चौड़ाई 834 फुट है। इस तालाब को उत्कल नरेश भानुदेव जी के मन्त्री नरेन्द्र देव ने खुदवाया था।

हर साल बैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया) से लेकर 21 दिनों तक इस तालाब पर चन्दन यात्रा (जल विहार) उत्सव मनाया जाता है। इस तालाब में हर रोज सैकड़ों आदमी स्नान करते हैं।

(20) **महोदधि (समुद्र)–** श्रीमन्दिर की दक्षिण-पूर्ण दिशा में समुद्र अवस्थित है। इसे महोदधि (बंगाल की खाड़ी) कहते हैं। यहाँ एक घाट है, जिसका नाम स्वर्गद्वार है। यहाँ शव का दाह-संस्कार किया जाता है। हिन्दुओं का विश्वास है कि पुरी में मरनेवाले किसी व्यक्ति का शव-संस्कार अगर स्वर्गद्वार में किया जाये, तो उस व्यक्ति की आत्मा भव-बन्धन से मुक्त हो जाती है। समुद्र के किनारे प्रात: कालीन सूर्योदय की शोभा अति मनमोहक है। हर रोज हजारों सैलानी समुद्र में स्नान करते हैं। समुद्र की वेला भूमि (तट) पर अनेक आकर्षक होटल और लॉज हैं।

पुरी शहर के विभिन्न मठ

पुरी शहर में अनेक मठ हैं। कुछ महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इन मठों की स्थापना की गई थी। जगन्नाथ संस्कृति की सुरक्षा और उसका प्रचार प्रसार करना ही मठों का प्रमुख उद्देश्य है। साथ ही गरीब विद्यार्थियों को भोजन और आश्रय प्रदान करना तथा साधु-सन्तों की सेवा करना और बाहर से आनेवाले तीर्थयात्रियों का आदर-सत्कार करना भी इन मठों का लक्ष्य है। इन मठों के मठाधीश या मठाधिकारी सारे कामकाज की देखभाल करते हैं। पुरी के विभिन्न मठों में अंगिरा आश्रम और भृगु आश्रम सबसे प्राचीन है। ये दोनों आश्रम दोलमंडल साहि में अवस्थित हैं।

(1) **एमार मठ–** एमार मठ एक प्रसिद्ध मठ है, जिसकी स्थापना श्री रामानुजाचार्य जी ने की थी, यह विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय का श्रेष्ठ मठ है।

(2) **शंकरानन्द मठ–** श्रीमद्भागवत् के टीकाकार श्रीधर स्वामी जी और स्वामी शंकरानन्द जी इस मठ के प्रतिष्ठाता हैं।

(3) **गोवर्द्धन मठ–** इस मठ के संस्थापक आदि शंकराचार्य जी हैं। इसको बालू मठ भी कहते हैं। जगन्नाथ मन्दिर से समुद्र के किनारे जाते समय स्वर्ग द्वार के रास्ते में यह मठ आता है।

(4) **जगन्नाथ वल्लभ मठ–** यह विष्णुस्वामी जी का मठ है। श्रीमन्दिर से गुण्डीचा घर जाते समय बड़े दाण्ड की बायीं तरफ यह मठ दिखाई देता है। यह राय रामानन्द जी का साधना-पीठ है। इस मठ में श्री जगन्नाथ महाप्रभु के कुछ उत्सव बनाए जाते हैं।

(5) **राधावल्लभ मठ–** यह मठ सिंहद्वार के सामने दोल मण्डप साहि में अवस्थित है। इस मठ की स्थापना, प्रसिद्ध माधवाचार्य जी के द्वारा की गई थी।

(6) **सोनार गौरांग मठ–** यह भक्ति सिद्धान्तों का मठ है। यह मठ चक्रतीर्थ के पास ही है।

(7) **राधाकान्त मठ–** बालिसाहि में अवस्थित यह मठ भी चैतन्य देव जी का परमपीठ है। श्रीचैतन्य जी ने यहाँ अपना अन्तिम जीवन बिताकर गौड़ीय वैष्णव मतवाद का प्रचार किया था।

(8) **बड़ उड़िया मठ–** उड़िया भागवत् के रचयिता भक्त शिरोमणि जगन्नाथ दासजी के द्वारा इस मठ की स्थापना की गई थी। यह मठ बालिसाहि में अवस्थित है।

(9) **नन्दिनी मठ–** माधवपीठ से थोड़ी दूरी पर मार्कण्डेश्वर साहि में नन्दिनी मठ है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण की परम भक्तिन मीराबाई यहाँ भजन-कीर्तन किया करती थीं। अब भी इस मठ में कृष्ण भगवान का बड़ा सुन्दर विग्रह है।

(10) **ओंकारनाथ मठ–** स्वर्गद्वार में स्थित यह मठ ठाकुर ओंकार नाथ जी के साधना-पीठ के रूप में प्रसिद्ध है।

(11) **गंगामाता मठ–** यह सार्वभौम भट्टाचार्य जी का मठ है। बालसाहि में यह अवस्थित है।

(12) **सालबेग मठ–** इस मठ के संस्थापक जगन्नाथ जी के परम भक्त यवन सालबेग हैं। जगन्नाथजी की कृपा से आसन्न मृत्यु से बचकर वे पुरी आए थे। पुरी में इस मठ की स्थापना करके उन्होंने महाबाहु जगन्नाथ के सम्बन्ध में बहुत सारी स्तुतियों की रचना की थी।

(13) **सिद्ध वकुल मठ–** सिद्ध बकुल मठ को हरिदास मठ भी कहते हैं। यवन हरिदास जी उड़ीसा आकर महाप्रभु जगन्नाथ जी के परम भक्त बन गए थे। वे इस मठ में रहकर साधना करते थे। इस मठ में चैतन्य जी का विग्रह और हरिदास जी का समाधि पीठ है। यहाँ सिद्ध वकुल नामक एक इतिहास प्रसिद्ध वकुल का पेड़ है।

(14) **आचारी मठ–** स्वर्ग द्वार के रास्ते पर यह मठ है। राधाकान्त मठ की तरह यह श्री चैतन्य देव जी के भक्तों का मठ है।

(15) **दशावतार मठ–** यह पवित्र 'गीतगोविन्द' ग्रन्थ के रचयिता श्री जयदेव गोस्वाजी जी का साधना-पीठ है। श्री गुण्डीचा मन्दिर के पास

यह मठ अवस्थित है।

(16) **गौड़ीय मिशन मठ–** गौड़ीय मिशन मठ एक बड़ा मठ है। इस मठ में विष्णु की विविध लीलाओं के विग्रह हैं। यहाँ विदेशी दर्शकों की बड़ी भीड़ लगती है।

(17) **राघव दास मठ–** श्रीजगन्नाथ जी के परम भक्त गोस्वामी रघु अरक्षित जी इस मठ के संस्थापक हैं। इस मठ में स्नान यात्रा के दिन श्री जगन्नाथ जी का हाथी वेष होता है।

(18) **धुमुसर मठ–** यह ओड़ीशा के रीतिकालीन कवि श्रीधर भंज तथा महाकवि उपेन्द्र भंज जी का साधना-पीठ है।

(19) **गोपाल तीर्थ मठ–** प्रसिद्ध दंडी आचार्य ने इस मठ की स्थापना की थी।

(20) **कबीर मठ या कबीर छता अखाड़ा–** स्वर्गद्वार चौक की दाहिनी ओर यह मठ अवस्थित है। इसकी स्थापना संत कबीरदास ने की थी।

(21) **बाऊलि मठ–** स्वर्गद्वार के रास्ते से होकर जगन्नाथ वेद महाविद्यालय को पार करने के बाद रास्ते की बाईं ओर बाऊलि मठ आता है। यह मठ सिक्ख गुरु नानक देव की पवित्र स्मृति के साथ जुड़ा हुआ है। पुरी आने वाले सिक्ख यात्री यहाँ गुरुनानक और गुरुग्रन्थ साहब की वन्दना करते हैं।

(22) **मंगु मठ–** बाऊलि मठ की तरह मंगु मठ में श्री गुरुनानक जी का पीठ है। यह मठ सिंहद्वार के सामने हैं।

(23) **पुरुषोत्तम मठ–** यह उड्डुलोमी आचार्य जी का मठ है।

(24) **पंजाबी मठ–** यह मठ श्रीमन्दिर के दक्षिण द्वार पर है।

(25) **तोटा गोपीनाथ मठ–** पुरी के हरचंडी साहि में यह मठ है। श्रीचैन्यदेव जी के निवास-स्थान और गदाधर पंडित जी के साधना पीठ के रूप में यह स्थान परिचित है।

(26) **दक्षिण पार्श्व मठ–** यह एक प्राचीन मठ है। भारत के प्रसिद्ध

देश-प्रेमी वीर छत्रपति शिवाजी के गुरु रामदास के समय से महाराष्ट्र के साथ इस मठ का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। इस मठ में विविध चित्र हैं।

(27) **नीलांचल आश्रम–** यह एक आधुनिक आश्रम है। शंकराचार्य मठ के प्रवेश द्वार से पश्चिम की ओर कुछ ही आगे नीलांचल आश्रम है। इस मन्दिर में राधाकृष्ण की युगल मूर्ति सुशोभित है। यहाँ अखण्ड नाम संकीर्तन होता है।

उपर्युक्त मठों के अलावा पुरी में और भी अनेक मठ हैं। पुरी के अन्यान्य मठों के नाम निम्नवत् हैं–

मार्कण्डेयाश्रम, पंडु आश्रम, अंगिरामश्रम, शंकरानन्द मठ, शिव तीर्थ, गोपाल तीर्थ, श्री रामदास मठ, कुंज मठ, शिशु मठ, गंधर्व मठ, चक्रतीर्थ मठ, सात लहड़ी (सप्त लहरी) मठ, लाएठी माता मठ, लवणिखिआ मठ, पुराण सभा मठ, कौशल्या दास मठ, नेवल दास मठ, सुन्दर दास मठ, करकी मठ, खजुरिआ मठ, हाथी गुरुदेव मठ, समाधि मठ, सिद्ध मठ, जटिया बाबाजी मठ, अर्जुन दास मठ, चाउलिया मठ, सारस्वत मठ, विशाखा मठ, बलगंडि मठ, झांझपीटा मठ, पटिआ रानी मन्दिर, लक्ष्मी चंद्र मठ, रामजी मठ, क्ली तिलक मठ, उत्तर-पार्श्व मठ, बड़ासन्त मठ, कोठ भाग मठ, झंडु मठ, वेंकटाचारी मठ, सोना गुसाईं मठ, बड़ा अखाड़ा मठ, मुलक चौरा मठ, श्री महाप्रभु बैठक, विधिदास मठ आदि।

चालीस जीवन मूल्य

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शुद्धता, सन्तोष, आत्मसंयम, शास्त्राभ्यास, भगवद्भक्ति, आध्यात्मिक विवेक, अनासक्ति, आत्मानुशासन, इन्द्रिय निग्रह, सहिष्णुता, पवित्रता, क्षमा, साहस, करुणा, औदात्य, आर्जव, परमार्थ, अमानित्व, पाखण्ड से मुक्ति, परोक्ष निन्दा का अभाव, सीधापन, विनय भाव, सहनशीलता, सेवाभाव, सत्संगति, जप, ध्यान, अद्वेष, निर्भयता, स्थिर चित्तता, निरहंकार, मैत्रीभाव, उदारता, कर्त्तव्यनिष्ठा और धीरज।

कुछ प्रमुख स्थल

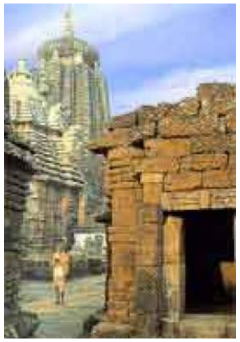

साक्षी गोपाल– पुरी जाते समय रास्ते में पिपली से करीब 14 किलोमीटर दूर पर साक्षीगोपाल आता है। इसे सत्यवादी भी कहा जाता है। यहाँ प्रसिद्ध साक्षीगोपाल जी का मन्दिर है। इस मन्दिर में श्री कृष्ण-राधा की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के पास में उत्कलमणि गोपबन्धु दास जी के सत्यवादी वनविद्यालय का स्मरण दिलानेवाला मौलसिरी पेड़ों का वन है। साक्षीगोपाल के सम्बन्ध में दो कथाएँ हैं। एक तो लोककथा और दूसरी ऐतिहासिक है। कहा जाता है कि एक बार दो ब्राह्मणों में झगड़ा हुआ। इनमें से एक ब्राह्मण के अनुरोध पर गवाही देने के लिए श्रीकृष्ण भगवान मथुरापुरी से यहाँ आए। श्रीकृष्ण जी का कहना था- ''तुम आगे चलो, मैं पीछे-पीछे चल रहा हूँ। लेकिन कभी पीछे मत देखना।'' रास्ते में किसी कारण वश ब्राह्मण के मन में सन्देह उत्पन्न हो गया और उसने पीछे मुड़कर देखा। पीछे मुड़कर देखने से भगवान श्रीकृष्ण का शरीर पत्थर की मूर्ति बन गया। इस घटना के बाद कांची के राजा ने एक मन्दिर बनवाया और वहाँ इस मूर्ति की प्रतिष्ठा की। इतिहास के अनुसार उत्कल नरेश दाक्षिणात्य के युद्ध में विजयी होकर वहाँ से यह मूर्ति अपने साथ ले आए। पहले इस मूर्ति की प्रतिष्ठा कटक के बाराबाटी किले में की गई थी। बाद में यवनों द्वारा उत्कल साम्राज्य का पतन हो गया। विधर्मी यवनों के डर से इस मूर्ति को बाराबाटी से लेकर खोर्द्धा के पास रथीपुर में रखा गया, फिर वहीं के कुन्तलाबाई नामक एक दूसरी जगह उनकी प्रतिष्ठा की गई। भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए भारत के विभिन्न स्थानों से लोग यहाँ आते हैं। कार्तिक महीने की आँवला नवमी के दिन राधा पाद-दर्शन हेतु साक्षीगोपाल में काफी भीड़ होती है।

कोणार्क– कोणार्क का सूर्य मन्दिर विश्वविख्यात है। भुवनेश्वर से बस द्वारा पुरी से पिपली होकर कोणार्क जाना पड़ता है। पुरी से यह करीब 53 किलोमीटर की दूरी पर है। समुद्र के किनारे से एक रास्ता और है। अधिकांश लोग इस रास्ते से चन्द्रभागा होकर भी कोणार्क जाते हैं। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण के पुत्र शाम्बदेव ने यहाँ सूर्योपासना करके कुष्ठ व्याधि से मुक्ति पाई थी। उसी दिन से यहाँ सूर्यदेव की पूजा शुरू हुई।

कोणार्क मन्दिर का निर्माण सन् 1250 में उत्कल के सूर्यवंशी नरेश लांगुला नरसिंह देव जी ने किया था। बारह सौ शिल्पियों की कड़ी मेहनत से बारह साल में इस मन्दिर का निर्माण कार्य पूरा हुआ था। इस मन्दिर पर की गई खुदाई और कारीगरी कौशल को देखकर कोई भी आदमी दंग रह जाता है। आज केवल इस विश्वप्रसिद्ध मन्दिर का टूटा हुआ अंश है। फिर भी मन्दिर का यह खण्डहर उत्कल के पूर्व गौरव और यश की याद दिलाता है।

कोणार्क को स्कन्दपुराण में 'सूर्य क्षेत्र', ब्रह्म पुराण में 'कोणादित्य', शाम्ब पुराण में 'मैत्रवन' कपिल संहिता में 'रवि क्षेत्र', प्राची माहात्म्य में 'अर्कतीर्थ' आदि नाम से जाना जाता रहा है।

कोणार्क मन्दिर के पास नवग्रह मन्दिर है। यहाँ पत्थर निर्मित नवग्रहों का विग्रह है। ये विग्रह बहुत सुन्दर और आकर्षक हैं। कोणार्क मन्दिर के पास एक म्युजियम है। यहाँ कोणार्क के कुछ प्राचीन कला–कौशलयुक्त पत्थरों को रखा गया है। विश्व–प्रसिद्ध कोणार्क मन्दिर आज भी लाखों–करोड़ों दर्शकों के मन में कौतूहल पैदा करता है।

कोणार्क मन्दिर से करीब 2 किलोमीटर की दूरी पर चन्द्रभागा तीर्थ है। यहाँ माघ महीने की सप्तमी तिथि के दिन एक बड़ा मेला लगता है। लाखों दर्शकों का यहाँ समागम होता है, जो स्नान के साथ–साथ सूर्योदय

का यहाँ आनन्द भी लेते हैं।

भुवनेश्वर– भुवनेश्वर को मन्दिर का शहर कहा जाता है। पुरी से करीब 59 किलोमीटर की दूरी पर यह बसा है। यहाँ अनेक मन्दिर हैं। इसे एकाम्र तीर्थ भी कहा जाता है। पुराने भुवनेश्वर में लिंगराज मन्दिर, राजारानी मन्दिर, बिन्दु सागर, केदार–गौरीकुण्ड, मुक्तेश्वर मन्दिर, अनन्त वासुदेव मन्दिर, मौसी माँ मन्दिर आदि अनेक मन्दिर हैं और साथ ही खण्डगिरि, उदयगिरि, धवलगिरि आदि पहाड़ हैं। जहाँ क्रमश– प्राचीन जैन–मूर्तियों तथा बौद्ध कीर्तियों का खण्डहर है। नए भुवनेश्वर में सचिवालय, राजभवन, उत्कल विश्वविद्यालय, रवीन्द्र मण्डप, म्यूजियम, विज्ञान केन्द्र, कलिंग स्टेडियम, कलिंग स्टुडियो, तारामण्डल एवं ओड़ीशा कृषि विश्वविद्यालय आदि हैं।

लिंगराज मन्दिर– लिंगराज मन्दिर का निर्माण सन् 1050 ई. में हुआ था। उत्कल में केशरी वंशी नरेश लालतेन्दु केशरी ने इसका निर्माण करवाया था। इस मन्दिर का कला–कौशल सबको चकित करता है। यहाँ शंकर भगवान का विग्रह है। विल्व पत्र और तुलसी पत्रों से इस विग्रह की पूजा होती है। इनके सामने गरुड़ और वृषभ हैं। अनन्त वासुदेव मन्दिर इस मन्दिर के पास ही है। यहाँ प्रसाद तैयार किया जाता है और बेचा जाता है। चैत्र महीने की शुक्लाष्टमी (अशोकाष्टमी) में यहाँ शिवजी की रथयात्रा होती है। हजारों–लाखों दर्शकों की भीड़ लगती है। श्री जगन्नाथ जी की तरह लिंगराज शंकर भगवान् की बहुत बड़ी प्रसिद्धि है।

नीलचक्र और पतितपावन बाना (ध्वज)– श्रीमंदिर के ऊपरी भाग में नीलचक्र है जिसमें लगा हुआ पतितपावन बाना है। नीलचक्र आठ अलग–अलग धातुओं से निर्मित है। इसकी परिधि 36 फीट और ऊँचाई 11फीट 8 ईंच है। यह बाना पीले रंग का होता है, जो 150 फीट का होता है।

प्रमुख झलकियों से

श्रीमंदिर का निर्माण– श्रीमंदिर का निर्माण 12वीं शताब्दी में गंगवंश के प्रतापी राजा चोलगंगदेव ने बनाया था।

श्रीमंदिर की ऊँचाई 214 फीट 8 इंच है और यह ओड़ीशा का सबसे ऊँचा जगन्नाथ मंदिर है। यह कलिंग स्थापत्य कला का बेजोड़ उदाहरण है। इसका आकार पंचरथ है।

अरुण स्तम्भ– अरुण स्तम्भ श्रीमंदिर के पूर्वद्वार अर्थात् सिंहद्वार के ठीक सामने अवस्थित है। उसकी ऊँचाई लगभग 10 मीटर (25'-2'') है। 13वीं शताब्दी में यह सूर्य मंदिर कोणार्क में था, जिसे 18वीं शताब्दी में पुरी लाया गया।

नव कलेवर– जिस वर्ष मलमास अथवा दो आषाढ़ पड़ता है, उसी वर्ष नव-कलेवर होता है। प्रायः माना जाता है कि मलमास 12 वर्षों के अन्तराल में होता है, लेकिन ऐसा देखा गया है कि मलमास की सबसे छोटी अवधि 8 वर्ष और सबसे बड़ी अवधि 19 वर्ष की होती है। पिछला नवकलेवर 17 जुलाई 1996 को हुआ था।

सैलानियों का गोल्डेन ट्रैंगल– जगन्नाथपुरी, कोणार्क और भुवनेश्वर

युग– सत्युग 17,28,000 वर्ष तक
त्रेतायुग 12,96,000 वर्ष तक
द्वापर युग 8,64,000 वर्ष तक
कलियुग 4,32,000 वर्ष तक

पुरी के अन्य नाम– श्रीक्षेत्र, पुरुषोत्तम क्षेत्र, शंख क्षेत्र, नीलाद्रि, नीलगिरि, मर्त्य बैकुण्ठ, नीलांचल, नित्य बैकुण्ठ, दशावतार क्षेत्र, जमनिका तीर्थ, कुशास्थली और जगन्नाथ धाम।

धाम– बदरीनाथ उत्तर में
द्वारका पश्चिम में

रामेश्वर दक्षिण में
जगन्नाथपुरी पूर्व में

महाप्रभु बदरीनाथ में स्नान करते हैं, द्वारका में श्रृंगार करते हैं, जगन्नाथ पुरी में अन्न का भोग करते हैं और रामेश्वर में शयन करते हैं।

पुराण– ब्रह्मपुराण, पदम् पुराण, विष्णु पुराण, शिव/वायु पुराण, नारद पुराण, भागवत पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, लिंग पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, गरुड़ पुराण, मत्स्य पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण वराह पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण। इनमें ब्रह्म पुराण, पदम् पुराण, मत्स्य पुराण और स्कन्द पुराण में महाप्रभु जगन्नाथ और उत्कल की विस्तृत चर्चा है।

चार आश्रम– भारतीय संस्कृति के चार आश्रम माने गए हैं। ये हैं- ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम।

पंच महायज्ञ– ब्रह्म यज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत यज्ञ और मनुष्य यज्ञ

चार प्रकार के माधुर्य– रूप-माधुर्य, वेणु-माधुर्य, प्रेम-माधुर्य और लीला-माधुर्य।

देवगण अधिकारी हैं– महाप्रभु जगन्नाथ विष्णुलोक के, बलभद्र जी शिवलोक के, सुभद्रा जी सुरालोक की, सुदर्शन जी स्वर्ण लोक के, लक्ष्मी जी देवलोक की, सरस्वती जी भूलोक की और नीलमाधवा जी किन्नर लोक के अधिकारी हैं।

लोक– (1) यक्ष लोक, (2) दिव्य लोक, (3) गन्धर्व लोक, (4) स्वर्ग लोक, (5) मातृ लोक, (6) पितृ लोक, (7) भू-लोक, (8) पाताल लोक, (9) तलातल लोक, (10) अतल लोक, (11) महातल लोक, (12) वितल लोक, (13)0 पृथ्वी लोक, (14) प्रेत लोक, (15) भूत लोक, (16) गोलोक, (17) देव लोक, (18) शक्ति लोक, (19) विश्व लोक, इत्यादि।

भक्ति गीत

नारद की बात मान प्रभु अवतार ले लिये,
बलराम और सुभद्राजी को साथ ले लिये,
आदेश रात सुन इन्द्रद्युम्न चल दिये,
हे दारु ब्रह्म आपको यह रूप दे दिये।।1।।

जय दारु ब्रह्म ब्रह्मेश्वर, जय विग्रह रूप नरेश्वर।
जय सर्वरूप जगदीश्वर, जय कर्म रूप लोकेश्वर।।2।।

कलियुग के अवतार हैं दाता,
दर्शन-धर्म के भाग्य विधाता,
द्वार तुम्हारे जो भी आता,
मनवांछित फल वो है पाता।
जय दारु ब्रह्म ब्रह्मेश्वर .....।।3।।

न है जाति-धर्म का बंधन,
यहाँ नहीं किसी का क्रंदन,
सुख-शांति भाव का नन्दन,
हम करते नित प्रभु वंदन।
जय दारु ब्रह्म ब्रह्मेश्वर ......।।4।।

–अशोक पाण्डेय

भक्ति गीत

नीलमाधव, हे जगन्नाथ स्वामी
नयन पथगामी, मैं तेरा चरण माँगूँ।
बड़े ठाकुर, हे दीनबन्धु नामी
हे अंतर्यामी, मैं तेरी शरण चाहूँ।

धन नहीं चाहूँ, जन नहीं चाहूँ
नाम न चाहूँ मैं, मान न चाहूँ
चाहूँ मैं तेरे दर्शन, करूँ मैं अर्चन,
करूँ मैं नर्तन, मैं तेरी शरण चाहूँ।

आज का दिन है बड़े पुण्यवाला
आज का दिन है यात्रा रथवाला
आज झूम-झूम गायन करूँ
आज चूम-चूम दर्शन करूँ, मैं तेरा चरण मांगू।

–अशोक पाण्डेय

शीघ्र प्रकाशित
भारतीय संस्कृति की अद्वितीय रचना
'भक्तों के भगवान- जगन्नाथ'
लेखक- अशोक पाण्डेय

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. Sidelights on History and culture of Orissa – Edited by M.N. Das
2. The Cult and Culture of Lord Jagannath by Daityari Panda, Sarat Chandra Panigrahi
3. Shri Jagannath Puri Past & Present by G.M. Tripathy
4. Lord Jagannath in Indian Religious life by B. Mullick, ed. Dr. H.C. Das
5. Legends of Jagannath Puri by R.K. Das
6. Indian Culture and Cult of Jagannath by Late Pandit Binayak Mishra
7. Lord Jagannath by Surendra Mohanty
8. A Glimpse into Oriya Literature by Chittaranjan Das
9. Conservation of Lord Jagannath Temple, Puri by Archaeological Survey of India, Bhubaneshwar Circle
10. Orissa Review
11. Jagannath Puri by Sri Balaram Mishra
12. A brief look at Sri Jagannath Temple, Puri by Mohini Mohan Tripathy
13. Our Lord by Prof. K.C. Pal
14. Orissa by Hotel & Restaurants Association of Orissa
15. Hidden Treasure of Vastu Shilpa Shastra and Indian Traditions, by Darebal Muralidhar Rao
16. Jagannath Puri, Published by Sir Jagannath Temple Managing Committee, Puri
17. Sri Jagannath Temple – At a Glance, by Prof. Gopal Chandra Tripathy
18. The Car Festival, Puri, 1990 – I & PR Deptt., Govt. of Orissa
19. श्री जगन्नाथ पुरी – श्री जगन्नाथ मंदिर परिचालना समिति, पुरी द्वारा प्रकाशित
20. हमारे पूज्य तीर्थ – राजीव
21. भक्त कथाएँ – राजेन्द्र शर्मा
22. गगनांचल – भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद, नई दिल्ली
23. भारतीय साहित्य कोश – संपादक, डॉ. नगेन्द्र
24. श्रीक्षेत्र: श्री जगन्नाथ (ओड़िआ) – संकलन, डॉ. ब्रजमोहन महान्ति एवं श्री सुभाष चन्द्र महान्ति
25. युगे युगे नवकलेवर (ओड़िआ) – डॉ. सदानन्द चौधुरी
26. नवकलेवर: विस्तृत विचार (ओड़िआ) – श्री शुकदेव महान्ति
27. श्रीजगन्नाथङ्कर नवकलेवर विधान (ओड़िआ) – डॉ. पूर्णचंद्र मिश्र
28. जय जगदीश हरे – डॉ. शंकर लाल पुरोहित
29. भारतीय संस्कृति को उड़ीसा की देन – डॉ. नत्थूलाल गुप्त, डॉ. शंकर लाल पुरोहित एवं अशोक पाण्डेय
30. स्कन्दपुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर

ONLY HINDUS ARE ALLOWED
Camera & Mobilephones are not allowed inside the Temple.